कथा-लेखिका डॉ. आभा पूर्वे

कथा-लेखिका डॉ. आभा पूर्वे

संपादक

डॉ. अमरेन्द्र

ISBN : ९७८.८१.८७८५५.६३.७

प्रथम संस्करण
२०२४

सर्वाधिकार ©
लेखकाधीन

प्रकाशक
अंगिका संसद
सराय, भागलपुर
(बिहार)-८१२ ००२
E-mail : angikasansad@gmail.com

हरियाणा कार्यालय
वार्ड-३३, सेक्टर-२८
सरस्वती विहार, गुरूग्राम-१२२००२

मुद्रक
Das Printer
गोविंदपुरी, दिल्ली।

मूल्य
एक सौ रूपये मात्र

Katha-Lekhika Dr. Abha Purbey
Edited By Dr. Amrendra Rs.100/-

इस संकलन के लिए

डॉ. आभा पूर्वे साहित्य में जितनी लोकप्रिय कवयित्री के रूप में हैं, उससे कहीं अधिक कथालेखिका के रूप में। सच पूछिए, तो इनके कथा-साहित्य पर मेरा ध्यान बाद में गया, जब शहर के ही एक सजग संस्कृतिकर्मी कुन्दन कुमार ने इनकी कहानियाँ पढ़कर मुझसे कहा कि कथालेखिका के रूप में डॉ. आभा पूर्वे तो भागलपुर की अमृता प्रीतम हैं। मेरी जिज्ञासा बढ़ी, तो इनके कथा-साहित्य पर अन्य विद्वानों की राय जानने के लिए उनके पास आभा जी के कहानी-संग्रह को भेजा और उन विद्वानों के जो लेख प्राप्त हुये, उन्हें 'वैखरी' के आभा पूर्वे विशेषांक में प्रकाशित किया। तब 'वैखरी' के प्रधान संपादक यशवंत सिंह विरदी थे। उस विशेषांक के पीछे भी उन्हीं की प्रेरणा थी।

यद्यपि डॉ. आभा पूर्वे की कहानियों पर प्राप्त समीक्षाएं मेरे ही द्वारा संपादित 'डॉ. आभा पूर्वे का कथा-साहित्य' पुस्तक में भी संकलित हैं, लेकिन इन्हें एक स्वतंत्र पुस्तक का रूप देने का मन तब भी था। बाद में जब इनका एक हिन्दी उपन्यास 'कुँअर विजयमल' आया और साहित्यकारों के बीच अपने शिल्प को लेकर चर्चाओं में रहा, तो सोचा सभी को एक जगह संकलित कर दूँ, ताकि इनके कथासाहित्य में रुचि रखनेवालों को अन्य विद्वानों के विचारों को भी जानने में आसानी हो सके। यह पुस्तक उसी सोच का परिणाम है। कुछ आलेख अवश्य उनके व्यक्तित्व से भी जुड़े हैं, लेकिन इन्हें भी यहाँ रखने का लोभ छोड़ नहीं पाया। आखिर लोकप्रिय कथालेखिका आभा पूर्वे के व्यक्तित्व के बारे में सहृदय तो जानना ही चाहेंगे, बस इसी से।

लेकिन इस संपादन से मैं संतुष्ट भी नहीं, कभी इनकी कविताओं को लेकर मैं ऐसी ही एक पुस्तक का संपादन करना चाहूंगा, जिसमें इनके सम्पूर्ण भव्य साहित्य पर विद्वानों के विचार होंगे, जो बहुत जरूरी है।

—अमरेन्द्र

रामनवमी, १७ अप्रैल २०२४

सम्पर्क : लाल खां दरगाह लेन
सराय, भागलपुर, बिहार, पिन-८१२००२
मोबाइल :-८३४०६५०६७६, ९६३६४५१३२३

समीक्षा और पृष्ठ

- 'शिरीष की सुधा' मानववाद की कहानियाँ ७
  —जसवंत सिंह विरदी
- भागलपुर तथा आभा पूर्वे को याद करते हुए १२
  —डॉ. पुष्पपाल सिंह
- नारीवाद से आगे की कथालेखिका : आभा पूर्वे १५
  —डॉ. विजेन्द्र नारायण सिंह
- आभा पूर्वे और निर्मल वर्मा की कहानियाँ १६
  —डॉ. कल्पना दीक्षित
- जिंदगी में रसी-बसी सक्रिय संघर्ष की कहानियाँ २१
  —फूलचन्द मानव
- आभा पूर्वे नारीवाद की कथालेखिका नहीं हैं २४
  —डॉ. श्यामल भट्टाचार्य
- शिरीष की सुधा : नारी चेतना और नारी शक्ति की कहानियाँ २८
  —डॉ. प्रितपाल सिंह महरोक
- 'अपनी-अपनी वैतरणी' सामाजिक संदर्भ में ३७
  —श्रीमती सुचिन्द्र कौर 'फुल्ल'
- आभा पूर्वे की कहानियों को पढ़ते हुए ४१
  —पी. एन. जायसवाल
- आभा पूर्वे का कथा-साहित्य ४३
  —अनिरुद्ध प्रसाद विमल
- आभा पूर्वे की लघुकथायें ४५
  —आशीष सिन्हा 'कासिद'
- डॉ. आभा पूर्वे का उपन्यास 'कुँवर विजयमल' ४८
  —शीतांशु अरुण
- क्यों बाँधती हैं आभा पूर्वे की कहानियाँ ५०
  —दयानंद जायसवाल
- प्राणवायु की तरह है आभा पूर्वे की कहानियाँ ५३
  —डॉ. अमरेन्द्र

साक्षात्कार ५७
जसवन्त सिंह विरदी के प्रश्न और आभा पूर्वे के उत्तर

'शिरीष की सुधा' मानववाद की कहानियाँ

—जसवंत सिंह विरदी

'शिरीष की सुधा' कहानी-संग्रह की कहानियों के वातावरण, पात्रों और उनकी समस्याओं द्वारा भी मैंने भागलपुर के माहौल को जाना-समझा है। वह मेरे शहर जैसा ही है। अलग इतना ही कि भागलपुर वाले हर सुबह माँ गंगा के दर्शन-दीदार करते हैं, मैं नहीं कर पाता। मेरे भाई विजेन्द्र नारायण सिंह ने पुस्तक 'शिरीष की सुधा' की भूमिका लिखते हुए मत व्यक्त किया है कि आभा पूर्वे नारीवाद की कथा-लेखिका है। मैंने पुस्तक की सभी कहानियाँ पढ़ी हैं। यह ठीक है कि हरेक कहानी की केन्द्र-बिन्दु एक नारी है, मगर मेरे विचार में 'शिरीष की सुधा' पुस्तक की कहानियाँ वास्तव में मानववादी विचारों को प्रकट करती हुई कहानियाँ हैं और लेखिका के सामने यह बात स्पष्ट है कि वह आम लोगों के लिए लिख रही है। इसीलिए कहानियों की भाषा सरल, स्पष्ट और उलझाव से मुक्त आम लोगों के निकट की भाषा है। जो लेखक खुद को बुद्धिजीवी मानते हैं, वे क्लिष्ट भाषा लिखकर सुख लेते हैं। सुख लेते हैं कि- देखा, हमें कोई नहीं समझ पाया।

आभा की सभी कहानियाँ इकहरे कथानक द्वारा अपने उद्देश्य को प्राप्त होती हैं। लेखिका का लक्ष्य यह है कि नारी का आदर-सम्मान बना रहे और परिवार भी न टूटे। नारी ने हमारे देश में बहुत मार खाई है, मगर अब वह शक्तिशाली हो गई है, मार खाने के लिए तैयार नहीं है। सरल भाषा में इकहरे कथानक द्वारा कहानी लिखना जोखम उठाने वाली बात है, क्योंकि अब लेखक परत-दर-परत लिखते हैं। मैं कहता हूँ कि परत-दर-परत लिखने का क्या लाभ है, अगर कहानी के अन्दर कुछ न हो। बादाम का छिलका कितना भी लुभावना हो, अगर उसमें गिरी ही

न रहे, तब ?

और फिर नारीवाद का नारा लगा कर लिखने वाले हमारे इधर बहुत हैं जो कि सेक्स को आधार बना कर लिखते हैं और कहते हैं कि नारी की कोख मुक्त होनी चाहिए.....किसके लिए ? क्या नारी की कोख कोई पब्लिक प्रोपर्टी है ? नहीं। मेरे लिए धरती है, माता है, बहन है, और बेटी भी है। लेखिका आभा पूर्वे ने नारी मन में बैठकर उसके परिवार, उसके दुख-सुख और उसके सामाजिक स्टेटस की बात की है। आने वाले वर्षों में वह नारी-जीवन के अन्य रूपों के बारे में भी लिखेगी-ऐसी मेरी आशा है, और विश्वास भी है ! नारी के अनेक रूप हैं। एक पत्र में मैंने उसे लिखा था कि लेखक को स्वतंत्र होना चाहिये। खेमों में बँटे हुये लोग कुछ समय पश्चात् माफिया का विकराल रूप धारण कर जाते हैं, जैसे अब हो रहा है और फिर एक निष्ठावान लेखक 'आऊट ऑफ फोक्स' हो जाता है। फिर भी, अगर वह माफिया से दूर रह कर जीने के लिए संघर्ष करे तो उसे मार्ग में कुछ और जैनुइन लोग मिल जाते हैं, जो उसका साथ देते हैं ! ऐसे लोगों का साथ जरूरी है।

मैं भागलपुर से दूर बैठा हूँ, फिर भी मुझे लगता है कि मैं 'शिरीष की सुधा' को पढ़ कर भागलपुर की नारी के मन को समझ सकता हूँ ! साहित्य का यही कर्त्तव्य है कि वह एक क्षेत्र के लोगों को दूसरे क्षेत्र के लोगों के पास ले जाता है, जिससे सम्वेदना का प्रभुत्व बढ़ता है। लोग एक-दूसरे को समझने लगते हैं।

'शिरीष की सुधा' पुस्तक की कहानियों में स्त्रियों के जीवन के आर्थिक आधार की बात गौण रूप में की गई है। आर्थिक आधार ही मानवीय सम्बन्धों को निश्चित करते हैं और फिर उन सम्बन्धों में से कहानियाँ जन्म लेती हैं। साहित्य को पढ़ कर किसी क्षेत्र के लोगों की जीवन-स्थितियों पर टिप्पणी की जा सकती है। 'और धनेसरी आजाद हो गई' तथा 'एक दिन का सुख' अलग-अलग धरातल पर विचरने वाली कहानियाँ हैं, मगर उनका आधार आर्थिकता ही है। उत्पादन के सभी साधन क्योंकि मर्द के अधीन हैं, इसलिए वह स्त्री को बराबरी का अधिकार देने के लिए तैयार नहीं है, उसे हीन भी समझता है, कुछ हालतों में उसकी पिटाई भी करता है। हमारे घर में भी यही कुछ होता था, मगर

मैं सदा ही अपनी माता का साथ देता था। अगर स्त्री आर्थिक रूप में स्वतंत्र है तो मर्द की नजर में उसका सम्मान बढ़ जाता है। मेरी दोनों बेटियाँ काम करती हैं और उनका काफी सम्मान है।

इस सम्मान के लिए नारियों को खुद ही संघर्ष करना होगा। 'एक दिन का सुख' तो नारी-मन की एक झलक ही है।

हाँ, हमारे वक्त में अर्थात् १९६०-७० तक नारियाँ नौकरियों में नहीं आई थीं। मैंने ऐसी ही एक महिला की कहानी 'अपनी-अपनी सीमा' १९६५ में लिखी थी, जो नौकरी करना चाहती है, मगर उसका पति रुकावट बन रहा है। उसके मन में है कि उसकी पत्नी, जो उसकी जागीर है, घर से निकलकर और लोगों की भी कुछ-कुछ हो जाएगी। घर में इन्टरव्यू पत्र आता है तो पति उसे फाड़ देता है, मगर पत्नी को पता चल जाता है और वह इन्टरव्यू देकर नियुक्ति-पत्र ले आती है। उसका पति बहुत छटपटाता है, मगर कुछ नहीं कर पाता। अब तो लगता है जैसे देश की सभी बहन-बेटियाँ घरों से निकलकर गली-बाजारों में आ गई हैं। हर जगह वे मर्दों के मुकाबिले में खड़ी हो गई हैं। नई सदी उनकी ही है। इस नई सदी की आत्मा के साक्षात्कार हमें सुश्री आभा पूर्वे की कहानियों में होने लगे हैं। स्त्रियों के बारे में जिस सम्वेदना से महिला लेखिका लिख सकती है, शायद हमलोग न लिख पाएँ। इसमें घबराने वाली बात भी नहीं है । हम भी लिखते रहेंगे कि हम नारी को कैसे जानते समझते हैं।

'एक दिन का सुख' की लीना अगर खुद काम करनेवाली होती तो राकेश के बारे में, कहानी के अन्त में उसने अपने जो विचार प्रकट किये हैं, उसे प्रकट करने की चिन्ता न रहती, क्योंकि वह सभी पैसे अपनी इच्छा से खर्च कर सकती थी। अब पैसे पति के हैं और वह उन्हें बेदरेग खर्च करके अपराध-बोध महसूस करती है। यह कहानी के पीछे की कहानी है, जिसकी ओर आभा पूर्वे ने संकेत किया है।

इसी प्रकार 'भय' कहानी के पीछे भी एक कहानी है। एक पिता ने अपनी छोटी बच्ची के साथ वह कुछ किया, जो हमारे समाज में टैबू है। यह बात टैबू बनकर हमारी मानसिकता में समा गई है, और फिर यह घटना जब अखबार की खबर बनती है तो एक किशोरावस्था को पार कर रही लड़की उसको कैसे महसूस करती है? यही कहानी है। मगर लेखिका

ने इस कहानी को लिखकर एक पिता के अपराध को हमारे समाज के सभी पिता—लोगों में बाँट दिया है। अगर नाबालिग अथवा बालिग बच्चियों से यही कुछ होता रहा तो सभी पिता इस अपराध में फँस जाएँगे। कितनी बड़ी बात कितनी सरलता से कह दी गई है ! कमाल की कहानी है। अद्वितीय !

मेरे मन में आता है कि कभी एक-एक कहानी पर लिखूँगा। फिर सोचता हूँ कि तब तक तो आभा की कहानियों की नई पुस्तक छप चुकी होगी । क्योंकि अनुभूतिशील लेखक की कलम में निरन्तरता बनी रहती है और वह हर समय आम लोगों की पीड़ा को अनुभव करता है। हमारे घरों में कहते हैं कि कलाकार समाज का वह शरीर है, जो हर समय लोगों की पीड़ा से द्रवित रहता है। यह अलग बात है कि समाज को कुछ खानेवाले भी होते हैं, जो हर वक्त शोषण करते हैं-कलाकार हो कर भी शोषण ! कैसी विसंगति है और यह दुनिया विसंगतियों से भरी पड़ी है।

कहते हैं कि दुनिया का सुधार करना है, इसलिए मैंने खुद को तबाह कर लिया है-दुनिया की पीड़ा देखी नहीं जाती। बहरहाल ! सब कुछ साथ-साथ ही चलना है। 'एक दिन का सुख' भी 'कुछ' सुख देता रहेगा और 'भय' की स्थिति भी हममें अपराध बोध की भावना भरती रहेगी—जब तक हम खुद को बदलने के लिए तैयार नहीं होते। लेखिका तो लोगों को तैयार करती ही है। उसके पास राजनीतिक शक्ति तो है नहीं कि संसद में बैठ कर संविधान में संशोधन करवा सके। लेखक, लोगों को परिवर्त्तन के लिए तैयार करता है। परिवर्त्तन लोग करते हैं।

एक बात और !

सरलता से लिखना बहुत कठिन है। हर कोई नहीं लिख सकता। मैं पैंतालीस वर्ष तक कहानी लिखने के बाद भी इस संघर्ष में जूझ रहा हूँ कि पाठक वर्ग को अपनी बात सहज रह कर कैसे समझाई जा सकती है। मेरा संघर्ष जारी है। मैं कहना चाहता हूँ कि आभा पूर्वे को अपनी सहज कला नहीं छोड़नी चाहिए, क्योंकि लेखक का सीधा सम्बन्ध पाठकों से है और पाठक सरलता चाहता है, पाठक के रूप में मैं भी। मैंने एक और बात भी की है कि मैं आभा पूर्वे को नारीवाद की लेखिका नहीं मानता। वैसे सभी लेखक नारीवादी लेखक होते हैं। समूचा साहित्य ही

नारीवादी है, कि साहित्य में नारी ही फोक्स में रहती है। कुछ लोग उसके तन-मन का आदर करते हैं और कुछ उसे नोचते हैं। (कमीने !)

इस पुस्तक की कहानियों को पढ़ कर मैं श्री विजेन्द्र नारायण सिंह से पूरी तरह सहमत हूँ कि आभा पूर्वे 'नये हस्ताक्षर' के रूप में उभरी हैं। उन्होंने आज तक जो भी कहानियाँ लिखी हैं, उनमें सामाजिक चेतना की प्रखरता, संघर्षशील नारी का स्वरूप और सामाजिक परिवर्त्तन के स्पष्ट स्वर मिलते हैं। बिहार और देश के और भागों में (महानगरों को छोड़ कर) जो नारी चेतना बढ़ रही है, आभा पूर्वे की कहानियाँ उसका शक्तिशाली दस्तावेज हैं। यह मेरा विश्वास है।

जहाँ तक इन कहानियों की सम्पूर्णता का सम्बन्ध है, इनमें कुछ त्रुटियाँ भी हैं। वे त्रुटियाँ हर लेखक में रहती हैं। जो लेखक समझने लगता है कि उसकी कला सम्पूर्ण हो गई है, वह विनाश की ओर चल रहा होता है। अब तो लोग कहने लगे हैं कि प्रकृति की कला भी सम्पूर्ण नहीं है-बच्चे भी विकलांग पैदा हो जाते हैं। वृक्ष भी कड़वे फल देने लगते हैं। फूल भी सम्पूर्ण नहीं होते । लेखक का बार-बार लिखते जाना उसका सम्पूर्णता की ओर बढ़ना है। उसे सम्पूर्णता न ही प्राप्त हो तो अच्छा है, ताकि वह निरन्तर लिखता रहे। यहूदी लोग किसी को शाप देते हुये कहते हैं—'जा, तेरे सभी सपने पूरे हो जाएं।' यह शाप ही है। मैं शाप देने में विश्वास नहीं रखता। मैंने इन कहानियों को पत्रिकाओं में नहीं पढ़ा था। आभा पूर्वे जी ने एक पत्र में मुझे बताया था कि ये कहानियाँ अंगिका भाषा में लिखी गई थीं। उन्हें तो इन्हें पढ़ने का सुख मिला ही होगा, हिन्दी में इन्हें पढ़ कर मुझे भी सुख प्राप्त हुआ है। कभी फिर केवल किसी एक कहानी पर ही लिखूँगा।

❐

भागलपुर तथा आभा पूर्वे को याद करते हुए

—डॉ. पुष्पपाल सिंह

भागलपुर गए काफी समय बीत गया है, किंतु वहाँ के लोगों के प्रेम की ऊष्मा यह महसूस नहीं होने देती कि वहाँ गए बहुत वक्त हो चला है। लगता है, अमरेन्द्र, आभा पूर्वे, जयप्रकाश गुप्त, अनिरुद्ध प्रसाद विमल, हृदयरोग विशेषज्ञ डॉ. सुनील कुमार—सब अभी-अभी तो साथ थे। दो दिन के भागलपुर-प्रवास में कैसी आत्मीयता थी, कैसी अंतरंगता थी—भुलाए नहीं भूलती। 'माधव मोहे ब्रज बिसरत नहिं।' की स्थिति है।

सामने भागलपुर से प्रकाशित ही 'नया हस्तक्षेप' है, उसमें प्रकाशित मेरे पत्र में भागलपुर जाने का वर्ष 1993 ज्ञात होता है, महीना शायद अक्टूबर का अंत। नवंबर का प्रारंभ था—कार्तिक गंगा-स्नान-पर्व के तब दो-एक दिन शेष थे। इससे पूर्व भागलपुर के इस साहित्यानुरागी समुदाय से मेरा परिचय 'शिरीष कथा' मासिक के माध्यम से हुआ। मैं इसमें जब-तब लेख भेजता रहता था। भागलपुर पहुँचने की अगली शाम (रात) पुनसिया साहित्य सम्मेलन में इन मित्रों ने मेरा स्वागत किया, उस स्वागत की बात फिर कभी, कहीं अन्यत्र। फिलहाल इतना ही कि अगले दिन प्रातः जब मैं विश्वविद्यालय गेस्ट हाउस पहुँचा, जहाँ डी. लिट. के एक वायवा के संदर्भ में ठहरा हुआ था, तो वहाँ आभा पूर्वे का फोन आया। 'कल मैं कार्यक्रम में नहीं पहुँच सकी, मेरा बच्चा बीमार था, किन्तु आपके दर्शन अवश्य करना चाहती हूँ। अभी भी बच्चा ठीक नहीं है।'' मैंने घड़ी पर नजर डाली तो लगा कि वापिसी यात्रा के लिए रेलवे स्टेशन पहुँचने से पूर्व मेरे पास आध-पौने घंटा है। तय हुआ कि मैं आभा के घर होता हुआ रेलवे स्टेशव जाऊँ। रेलवे स्टेशन जाने के लिए अटैची रिक्शे पर लद चुकी थी। साथ के छात्र को कहा कि रिक्शेवाले से कहो

कि मशाकचक होते हुए चलेंगे। मशाकचक में ही आभा पूर्वे का घर था। मुहल्ले और मकान का भूगोल भी मेरी स्मृति में बसा हुआ है। भूला हूँ तो आभा पूर्वे की शक्ल भूल गया हूँ—केवल इतना याद है कि चश्मा लगा प्रायः ३० बरस की एक सौम्य-सी लड़की अपनी माँ और प्रायः पाँच वर्षीय पुत्र के साथ मिली थी। आभा और मेरे परिचय में इतनी संक्षिप्तता और औपचारिता थी कि मैंने यह पूछना उचित नहीं समझा कि वे अपनी माता के घर में क्यों हैं? पति कहाँ काम करते हैं? आदि। केवल इतना-भर याद है कि शायद वे किसी बैंक में कार्यरत थीं, या हो सकता है उन्होंने अपने पति के विषय में बताया हो कि वे बैंक में हैं। ठीक-ठीक यह याद नहीं है। अस्तु!!

इससे पूर्व आभा पूर्वे बहुत देर से अपनी फोल्डर पत्रिका 'नया हस्तक्षेप' मुझे निरंतर भेजती रही थीं। यह अनियतकालीन फोल्डर-पत्रिका मुझे बहुत प्रभावित करती थी, इसी परिचय-क्रम में आभा ने बताया कि जब भी उसके पास कुछ पैसे होते हैं, वह यह पत्रिका निकाल लेती है। अपने स्वल्प साधनों में पत्रिका निकालने की यह जीवट-अभिभूत था मैं। अपनी जरूरतों से पैसे बचने पर महिलाएँ क्या-क्या खरीदने की साध रखती हैं और आभा की साध होती कि कुछ पैसे बचे तो पत्रिका 'नया हस्तक्षेप' का ताजा अंक प्रकाशित हो। कैसा है यह साहित्य-अनुराग। मैंने कई जगह अपने भाषणों में इस बात का जिक्र किया कि भागलपुर में कितनी ऊर्जा, कितनी निष्ठा और लगन है लोगों में कि अपने सीमित साधनों से पत्रिकाएँ प्रकाशित करते हैं। हमारी यह भेंट वापसी-यात्रा की हड़बड़ी में संक्षिप्त-सी ही रही।

पटियाला लौट आता हूँ, यहाँ के जागतिक धंधों में पड़ जाता हूँ—तभी कुछ समय पश्चात् आभा का अत्यन्त आत्मीय पत्र 'आदरणीय चाचा जी' के सम्बोधन के साथ मिलता है। शायद साथ में अपनी कुछ कहानियाँ भेजी थीं और उन पर राय माँगी थी मेरी। तब से मैं भेज पाऊँ या न भेज पाऊँ, प्रत्येक दीपावली/नववर्ष पर अपनी इस बेटी का स्वरचित कविता में पोस्टकार्ड पर अभिनंदन अवश्य मिलता है, जिसे पाकर बहुत मीठी-मीठी-सी अनुभूति होती है । इस दूरस्थ पर मन के अत्यन्त निकट सम्बन्ध को जीने में कैसी समृद्धि की अनुभूति होती है, इसे मैं ही जानता

हूँ और निर्धन की पूंजी की भांति संजो कर रखता हूँ इसे। आभा पूर्वे पर पत्रिका का विशेषांक निकल रहा है, जानकर अत्यन्त प्रसन्न हूँ मैं और इतनी दूर से मैं शब्दों के अक्षत-कुंभ से आभा का अभिनंदन करता हूँ।

नारीवाद से आगे की कथालेखिका : आभा पूर्वे

—डॉ. विजेन्द्र नारायण सिंह

इधर कहानियाँ साहित्य की केन्द्रीय विधा बन गई हैं। सामाजिक यथार्थ और उसके बदलाव का जैसा चित्रण कहानियों में हो रहा है, वैसा कदाचित् किसी अन्य विधा में नहीं। अतः जो भी रचनाकार आ रहा है, वह अधिकांशतया कहानी में ही अपनी प्रतिभा आजमाता है।

आभा पूर्वे नये हस्ताक्षर के रूप में उभरी हैं। साहित्यिक पत्रकारिता और नारीवाद से उनके रचनात्मक लेखन को धार प्राप्त हुई है। उन्होंने जो भी अब तक कहानियाँ लिखी हैं, उनमें सामाजिक चेतना की प्रखरता, संघर्षशील नारी का स्वरूप और सामाजिक परिवर्त्तन के स्पष्ट स्वर मिलते हैं। ये तो सामाजिक समस्याएं ही हैं, जो साहित्य-मन्दिर के अन्तर्देश की रचना करती हैं । आभा पूर्वे की कहानियों को पढ़कर जो पहली धारणा बनती है, वह यह कि वे नारीवाद की रचनाकार हैं। उनकी कहानियों में उस नारी की समस्या है, जो नई शिक्षा पा कर घर से बाहर आ गई है और जिसका संघर्ष पुरुष के पुराने संस्कार से हो रहा है। इस समस्या को भारतीय साहित्य में कदाचित् सबसे पहले रविन्द्र नाथ ठाकुर ने 'घर और बाहर' उपन्यास में उठाया था। नारी जो घर की एक छोटी नदी थी, जिसके जीवन की धारा सँकरी और बँधी हुई थी, वह बाहर आ कर एक महानद बन गई और नर के पुराने जीर्ण संस्कार से उसकी टकराहट होने लगी। इसी टकराहट में नारी का संघर्षशील रूप उभरा है। आभा पूर्वे ने इसी संघर्षशील नयी नारी की कहानियाँ लिखी हैं।

आभा पूर्वे ने अपनी कहानियों में द्रव्य के रूप में भारतीय समाज की शिक्षित और अशिक्षित दोनों प्रकार की नारियों को लिया है। 'और धनेसरी आजाद हो गई' आजाद नारी के संघर्ष की कहानी है। यह

महिला-मुक्ति की कहानी है और इसमें अनपढ़ नारी का जुझारू, स्वाभिमानी रूप उभरा है। वह अपनी अस्मिता और स्वाभिमान की रक्षा के लिए शराबी पति को तमाचा मार कर चल देती है। उसी प्रकार 'अपनी-अपनी वैतरणी' भी महिला-मुक्ति की ही कहानी है। इसमें रमण की समस्या वही है, जो 'घर और बाहर' के नायक की है। नारी जब घर से बाहर होती है, तब पुरुष के पुराने परम्पराभुक्त संस्कार को धक्का लगता है। रमण के सीने में ऐसा ही धक्का लग रहा है। इस कहानी का सारा कहानीपन इसी धक्के का ताना-बाना बुनने में निहित है। उसी प्रकार 'निराशा' भी नारीवाद की ही कहानी है। सुनीता अपने पति काशीनाथ से—शराब पीकर पिटाई करने के कारण—सम्बन्ध तोड़ लेती है। इसी प्रकार की कहानी 'विधवा सुहागिन' है, जिसमें ममता सिन्हा वैवाहिक जीवन की विसंगति से ऊब कर अपनी तीन बेटियों के साथ पति का परित्याग करती है तथा एक स्कूल में अध्यापन-कार्य करती हुई अपने को विधवा घोषित करती है। उसके मन में पति से गहन वितृष्णा उत्पन्न हो गई। गहन वितृष्णा भी विद्रोह ही है।

स्पष्ट ही आभा पूर्वे नारीवाद की कहानीकार हैं और नारीवाद उनकी कहानियों का प्रमुख थीम है। तब भी उनकी कहानियों के और रंग भी है। वे नारी जाति के मनोविज्ञान में पेंचकश की तरह बैठती हैं और उनके मन की तरंगों को पकड़ लेती है। नारी के मन की इन तरंगों में ईर्ष्या, द्वेष, स्पर्धा और अस्मिता जैसे भाव हैं और भावों की लहरों से इनकी कहानियाँ आप्यायित हैं। 'काला इन्द्रधनुष' शीर्षक कहानी में कनकलता अपने पति देवकांत के साथ हमेशा दबंग अभिमान से बात करती है और यह उसके दाम्पत्य को पूरी तरह नष्ट कर देता है। इस माहौल में उसके पुत्र कामदेव का जीवन जहर से भर जाता है और वह लक्ष्यहीन भटकाव में युवावस्था में ही बूढ़ा हो जाता है। कनकलता के दुष्ट अभिमान से दाम्पत्य नष्ट हो जाता है और परिवार भी बसता नहीं है। इस संग्रह में 'औरत का प्रेत' नारी सुलभ ईर्ष्या की जबर्दस्त विश्वसनीय कहानी है। इसमें कहानी की नायिका सुनीता है, जिसकी दीदी को बराबर यह संदेह रहता है कि वह उसके पति पर डोरे डाल रही है। इस बेबुनियाद संदेह के कारण दोनों बहनों का सौहार्द और स्नेह नष्ट हो

गया और उनके बीच व्यर्थ का तनाव पैदा हो जाता है। इस संग्रह की सबसे अच्छी और मनोवैज्ञानिक कहानी 'शिरीष की सुधा' है। सुधा जब ब्याह कर ससुराल आती है, तब लोग उसे पति से सौन्दर्य में हीनतर बतलाते हैं और इस बात की उसके मन में इतनी ग्लानि होती है कि वह क्षति-पूर्ति के लिए शिरीष के सहयोग से वैदुष्य और डिग्री प्राप्त कर महिला महाविद्यालय में लेक्चरर बन जाती है और लेक्चरर बनने के बाद जब अशेष यश मिल जाता है, तब शिरीष को निचोड़े हुये नींबू की तरह फेंक देती है। सुधा की कृतघ्नता बहुत ही घृणास्पद लगती है, फिर भी यह मनोवैज्ञानिक जटिलता की कहानी है और कदाचित् संग्रह की सर्वश्रेष्ठ कहानी यही है। यह कहानी जैनेन्द्र की विख्यात प्रेम कहानी 'दृष्टिकोष' की तरह जटिल और श्रेष्ठ है। इस कहानी का मोड़ इस संभावना की पुष्टि करता है कि आभा पूर्वे एक अच्छे, सधे हुए कहानीकार के रूप में उभर रही है।

इस संग्रह में नारीवाद से अलग हटकर भी कुछ कहानियाँ हैं और ऐसी ही कहानियों से संग्रह को वैविध्य प्राप्त हुआ है। 'ताकि चन्दन जल न जाए' एक अलग ढंग की कहानी है। त्रिलोचन के बेटे गणपत को, त्रिलोचन की कमजोर आर्थिक स्थिति को देख कर, पूरा गाँव पढ़ाता है और जब वह इंजीनियरिंग की डिग्री लेकर गाँव आता है, तब कुछ डकैत गाँव लूटने आ जाते हैं। जब गणपत के पिता त्रिलोचन, डकैतों से संघर्ष करने निकलते हैं, तब वह (गणपत) स्वयं तो युवा शरीर का हो कर भी नहीं ही जाता है, अपने पिता को भी रोकता है, लेकिन पिता त्रिलोचन रुकते नहीं हैं, वह गाँववालों के सहयोग से डकैतों को भगा कर घर वापस आते हैं। पर त्रिलोचन को अपने पुत्र के व्यवहार से बड़ा सदमा लगता है। यह शिक्षित वर्ग की कायरता और अतिस्वार्थपरता की कहानी है। गणपत पूरे गाँव के लिए बरगद नहीं बन सका। जबकि पूरे गाँव ने मिलकर उसे पढ़ाया था। कथाकार प्रेमचन्द ने मध्यवर्ग की इस कायरता और स्वार्थपरता को पहली बार समझा था। उन्होंने 'मन्त्र' तथा 'चार बेटों वाली विधवा' जैसी कहानियों में मध्यवर्ग के इस स्वार्थजीवी स्वरूप का पर्दाफाश किया था। उनका कहना था कि जो पढ़े-लिखे हैं, वे बेईमान, स्वार्थजीवी और कमजोर हो गये हैं, उनपर भरोसा नहीं किया जा सकता

है। यह कहानी प्रेमचन्द की विरासत को आगे बढ़ाती है।

आभा पूर्वे में नये हस्ताक्षर की ताजगी और स्फूर्ति है। वह बड़े उत्साह से नारीवाद को आगे बढ़ाती हैं। और उससे भी बाहर निकल कर वृहत्तर सामाजिक संदर्भ को पकड़ती है। सामाजिक विसंगति को कहानी में गढ़ने में उनकी प्रतिभा की कुशलता साफ दिखलाई पड़ रही है। वे नारी मनोवैज्ञानिक परतों की गहराई में प्रवेश करती हैं और उसका पर्तानुपर्त अनुसंधान करती हैं। समाज के जख्म पर वे सहज ढंग से हाथ रख देती हैं। उनकी कहानीकला के साथ ही हिन्दी कहानी भी समृद्ध हो रही है, यह बात बेहिचक और पूरे विश्वास के साथ कही जा सकती है। ❐

आभा पूर्वे और निर्मल वर्मा की कहानियाँ

—डॉ. कल्पना दीक्षित

'शिरीष की सुधा' कहानी में लेखिका डॉ. आभा पूर्वे स्त्री अंतर्मन की पड़ताल भर नहीं करतीं, अपितु वे एक निष्कर्ष तक नायिका को पहुँचा देती हैं। यहाँ द्वंद्व है किंतु उलझाव नहीं है। वेदना है लेकिन कमजोरी नहीं है। मनोविश्लेषण की यही विशेषता लेखिका को कहानीकार निर्मल वर्मा से एक सोपान ऊपर प्रतिष्ठापित करती है। नवविवाहिता सुधा अपना अध्ययन जारी रखती है। समझ को स्पष्टता और व्यापकता देने हेतु शिरीष उसकी मदद करता है। दोनों का मेलमिलाप बढ़ता है। दोनों एक दूसरे के पूरक बनते हैं लेकिन यह ऐक्य भीतरी भावनाओं का और बाहरी मेधा का संतुलित मेल है। सुधा इस सान्निध्य में सफल होती चली जाती है। छिछली सामाजिक छीछालेदर से मुक्त भावनाएं मलीन नहीं होने पातीं। आदर्शवाद व्यावहारिक बनता है। लेकिन अंतर्मन के सत्य में सुधा की बौद्धिकता शिरीष पर आश्रित है। सुधा का विकसन मौलिक नहीं है, इसकी गहन ग्रंथि का बोध सुधा को है। उसकी चेतना जाग्रत है। सत्य की स्वीकारोक्ति के बावजूद सुधा कॉलेज के कार्यक्रम में अपनी सफलता का श्रेय अपनी मेहनत, लगन और दृढ़संकल्प को देती है। सुधा स्वयं को हीन/कमतर नहीं प्रमाणित होने देती। अपने अस्तित्व के प्रति यह जागरूकता परिवार/समाज के समक्ष उसे सशक्त बनाती है। समाज के सामने भावनाओं का सम्मान बचाना सुधा जानती है। वह बहाने से शिरीष का घर में आना-जाना बंद करवाती है। भीतरी पीड़ा को सहकर बाहरी श्रेष्ठता गढ़ना लेखिका का अद्भुत अनुप्रयोग है। क्लास में लेक्चर का विषय 'कबीर का रहस्यवाद' वस्तुतः सुधा के अन्तस् का रहस्य दर्शाता है। सुधा की स्मृति में शिरीष से उसकी प्रथम भेंट धर्मवीर भारती की कविता का अर्थ समझने के लिए होती है। यह प्रसंग पाठकों के मन में

धर्मवीर भारती के उपन्यास 'गुनाहों का देवता' की नायिका सुधा की स्मृति जीवंत करता है। दोनों कथानक में मेलमिलाप के आधिक्य में भी सामाजिक हस्तक्षेप/संदेह नहीं है। कहानी में वर्तनीगत अशुद्धियां जायके में खिसराहट लगती हैं।

डॉ. आभा पूर्वे की कहानी 'भय' में ख़बर के खौफ़ की तीव्रता है। छोटे-से स्नेहिल परिवार में किशोरावस्था पार करती कावेरी और उसके पिता के नेह-रस की छलकन है। माँ की झिड़की ने बाप-बेटी के इस रिश्ते को ठहराव दिया और बचपना परिपक्व हुआ। गाम्भीर्य की यात्रा में कावेरी अपने पिता को अखबार की खबरें पढ़कर सुनाती है। केवल हेडिंग पढ़ने वाले जयकान्त बाबू अब छोटी से छोटी खबर को भी सुनते रहते हैं। इसी क्रम में कावेरी एक ख़बर पर ठहर जाती है। पिता द्वारा बहुत जोर देने पर भी उसकी घिग्घी बंधी रह जाती है और वह बहाने से माँ का हाथ बंटाने चली जाती है। यह घटना पाठकों में कौतूहल जगाती है। यहीं कहानी अपने गठन में पूर्ण सफल है। जिज्ञासा प्राबल्य ही कहानी में श्वसन-प्रवाह होता है। अतः प्रस्तुतीकरण में कहानी जीवन्त बनी है। परश्व माँ के उत्सव में जाने पर अकेली कावेरी उसी खबर से आक्रांत होती है। ख़बर की स्थानीयता के कारण कावेरी का डर बढ़ता है। उसे चुपके से सुनी हुई माता-पिता के मध्य हुई वार्ता की घटना याद आती है। जिसमें उसके पिता मद्यपान करके आते हैं और माँ उन्हें फटकारती हैं। पिता का मद्यपान उसके डर को और बढ़ाता है। पाठक भी भयानक रस में थर्राने लगते हैं। आसपास की एक आपराधिक घटना में कई सूत्र इस तरह जुड़ते-उलझते हैं कि कावेरी तरबतर हो जाती है। भय की तीव्रता अत्यधिक गहन होती है। सम्बंधों की पवित्रता संदिग्ध बन जाती है। परिवेश की एक कुत्सित इकाई समष्टि को ही लपेट लेती है। अखबारी ख़बरें सूचना मात्र नहीं होतीं, ये ख़बरें सजग ही नहीं करतीं, अपितु भयाक्रांत भी करती हैं और किन्हीं सन्दर्भों में अपराध हेतु उत्प्रेरित भी करतीं हैं। अंततः देर रात लौटे पिता और कावेरी के मध्य बंद किवाड़ ही रह जाती है। बाहर दरवाजे की खटखटाहट का शोर और भीतर डर की चीख घुटती रहती है। सामयिक प्रासंगिकता लिए हुए यह कहानी बुनावट में पूर्ण सफल है। ❐

जिंदगी में रसी-बसी सक्रिय संघर्ष की कहानियाँ

—फूलचन्द मानव

सादगी और सहजता से कहानी कहने वाली लेखिकाएं हिन्दी में बहुत ज्यादा नहीं हैं, दिखावट, बनावटवाली कुछ उलझी कहानियाँ आम तौर पर लेखिकाओं द्वारा लिखी गयीं, पढ़ने में मिलती रही हैं, इकहरी कथा का लाभ पाठक को यह होता है कि कहानी समझ में आती है, कौतुहल, जिज्ञासा बनाए रखती है, दिलचस्पी के साथ पाठक को बाँधती है, उसे साथ लेकर चलती है, कुछ ऐसी विशेषता इधर मुझे हिन्दी भाषी-प्रांतों की कुछ महिला कथाकारों में मिली हैं, इनमें एक अलग नाम है आभा पूर्वे का, जिसके पास कहानी की संवेदना के साथ पाठक के लिए बहुत कुछ है—संदेश, उद्देश्य, सार्थकता और जीवंत-चित्रण । युवा कथाकार आभा पूर्वे ने ज्यादा कहानियाँ भले न लिखी हों, पर चर्चा के योग्य कहानियाँ अपने पाठकों को वे भेंट कर पायी हैं, यह शुभ संकेत है।

नारीवाद के नारे को लेकर जो लेखन मार्केट में परोसा जा रहा है, उसमें सारा उपयोगी ही हो, यह जरूरी नहीं, नारीवाद की चर्चा फतवे या नारे के तौर पर भले हाल ही के वर्षों में प्रखरित हुई है, पर इस पर कार्य दशकों से, और दमदार तरीके से होता आया है—अपने-अपने अंदाज में आभा पूर्वे की कहानी में इसका प्रभाव अवलोकनीय है। 'शिरीष की सुधा', 'ऋणी', 'काला इन्द्रधनुष' या 'भय' ही नहीं, 'औरत का प्रेत' से लेकर 'सरजू का सूरज डूब गया' तक 'अनकही कथा', 'अपनी-अपनी वैतरणी', 'ताकि चन्दन जल न जाए' जैसी कई कहानियाँ हैं, जिनका 'पाठ' लेखिका के उद्देश्य को भी रेखांकित करता है, उसे विस्तार भी देता है।

समाज और मनुष्य, परिवार और आस-पास, घर और रिश्ते,

संबंधों की अस्मिता, ऐसा बहुत कुछ सामाजिक-पारिवारिक दृष्टि से आभा पूर्वे की कहानियाँ में खोजा जा सकता है। पानी के बहाव, प्रवाह की तरह, हवा की तरह, गंध की तरह आभा पूर्वे की कहानियाँ प्रतीति देती हैं और अनकहा भी बहुत कुछ बोलने लगता है।

कहानियों का 'पाठगत-अध्ययन' आभा पूर्वे की रचना-शैली को खोलता-खुलता देखा जाता है। ऊन के गोले की तरह इनके पात्रों का अन्तर्मन परत-दर-परत उधड़ता-खुलता है। भाषा में बिम्ब चमकते हैं, अर्थ-विस्तार देने। बहुत कुछ गति से कह जाते हैं। सीधी-सादी शैली कहानी बना जाती है। हर मन की पीड़ा, अपना दर्द, दूसरों की समस्या, पात्रों का द्वन्द्व लेखिका महसूस करती है, तो उसकी नयी कहानी जन्म लेती है। पात्र-संसार जुड़ता-मिटता समाज, घर-परिवार, मन को कुरेदने लगते है। फिर शिक्षा, आर्थिकता, होड़, जागरूकता, वासना, यन्त्रणा—एक-एक करके आभा पूर्वे की कहानियों के माध्यम से पाठक को 'डिस्टर्व' करते हैं। यही परेशानी कहानी का मूल उत्स, सही श्रोत हो जाती है।

संबोधन शैली में रची 'ऋणी' जैसी सामान्य पत्रात्मक कथा हो, या 'काला इन्द्रधनुष' जैसी कोई व्यथा, आभा पूर्वे के पास कहने के लिए इतना कुछ है कि कथा सम्पन्न हो जाने पर भी अनकहा शेष रह जाता है। क्या वही संकेत-चिन्ह कहानी कहलाता है ?

कौतूहल, उत्सुकता, जिज्ञासा की मोहमाया रचनात्मक कसाव दे जाती है। सर्जना के स्तर पर कहानी यहाँ फिर सफल कहलाती हैं। नर पात्र हों या नारी पात्र, मुख्य कैरेक्टर हो या गौण पात्र, एक हलचल, एक मंथन की ओर इंगित करते चलते हैं। ''चाहती तो रातों-रात मैं विष्णुकांत के साथ शहर छोड़ सकती थी। लेकिन जब भी द्वार तक आती, मन में अनैतिकता का बोध उभर आता और मेरे कदम द्वार से आंगन की ओर लौट जाते।'' (पृ० २०-२१, ऋणी, शिरीष की सुधा) फिर नैतिकता-अनैतिकता की समझ, समयसापेक्ष और सार्त- कालिक कांसैप्टस ''घर-समाज विरोध ा करता हो और वैसी स्थिति में तमाम सामाजिक मूल्यों को तोड़ते हुए अपने प्राप्य को हासिल कर लेना क्या नैतिक ठहराया जा सकता है ?'' (पृ० २२) लेकिन ज्ञान या व्यक्ति को भुलाना क्या इतना ही सरल है ?

ऋणी तो मन है। यहाँ द्वन्द्व ने कहानी को चमक प्रदान की है ।

कनकलता, देवकान्त, श्वसुर, कामदेव, मौसी-संबोधन भर नहीं, जीवन-ज्वार की चलती-फिरती आकृतियाँ हैं। धड़कन के साथ चलती हैं। सोचती हुईं, सहती हुईं, कहती हुईं। ''मैं यूं ही सड़कों, गलियों पर आजीवन भटकता रहूँगा ताकि लोग सब कुछ समझ सकें और यह जान सकें कि परिवार पति-पत्नी में एक दूसरे के विश्वास, प्रेम और प्रोत्साहन पर स्थायी होता है। अलग व्यक्तित्व की रक्षा में नहीं। मौसी, आज का समाज हमें सब कुछ दे सकता है—स्वतंत्रता, व्यक्तित्व निर्माण, इन्द्र की सुविधाएँ, लेकिन हमारा सुखी-सा परिवार सिर्फ हमारे ऋषियों और पूर्वजों के चिंतन ही दे सकते हैं, जिसे हमने छोड़ दिया है। ''(पृ० ६९—काला इन्द्रधनुष) कथ्य में गुंथी संवेदना कथानक को खोलती है तो पीड़ा बोलती है या प्रेम, लगाव या घृणा, अपनत्व या दुराव, यह सिलसिला आभा पूर्वे की कहानियों के 'पाठ' को बारीकी से पढ़ने की माँग करता है, एक साँस जैसे दूसरे साँस को छू रहा जीवन-दान करता है। वैसे ही फिकरा-दर-फिकरा कहानी तनती है, संभलती है, अपने सहारे खड़ी होती, फिर आसमान की तरह छा जाती है।

'और धनेसरी आजाद हो गयी' का रेखांकित मर्म कथाकार की कई कहानियों में झलका है। संघर्ष के लिए जो दिशा चाहिए, वह लेखिका ने अपने नारी पात्रों को प्रदान की है। भाषा हिन्दी हो या पंजाबी या अंगिका, कहानी की मूल संवेदना उसके कैसे और किस तरह होने में है। ऊपर से सुनने में जो कथाएं समान लगती हैं, उनका पाठ, ट्रीटमेंट, और डील करने का स्तर, उसे भीड़ से अलग कर सकता है। आभा पूर्वे को इधर सफलता मिली है। इनकी कहानियाँ जीवन से जुड़ी जिंदा धड़कनों की संघर्ष-गाथाएं हैं।

❐

आभा पूर्वे नारीवाद की कथालेखिका नहीं हैं

—डॉ. श्यामल भट्टाचार्य

आभा पूर्वे अंगिका और हिन्दी की एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। उनके प्रथम कहानी-संग्रह 'शिरीष की सुधा' की भूमिका लिखते हुए श्री विजेन्द्र नारायण सिंह ने आभा पूर्वे को एक नारीवाद की कथालेखिका के रूप में वर्णन किया है। यह भूमिका पढ़ते ही मेरी नाक सिकुड़ गई। मैं किसी भी लेखक को अलहदा दलित चिन्तक, अलहदा महिला चिन्तक, अलहदा प्रवासी चिन्तक रूप को प्रतिस्थापित करते देख न जाने क्यों शुरू में ही उनकी चिन्ता को विश्व की सीमा पर दया की दृष्टि से देखते देखना शुरू करता हूँ।

मेरे विचार से यह हाशिए की दृष्टि एक शिल्पकृति को अनावश्यक एक आरोपित जटिल अंधकूप पर धकेल देती है। दरअसल यह कुछ आलोचकों द्वारा प्रस्तुत किया गया तिलिस्माई भ्रममात्र हैं। जो भी नए लेखक उस भरमाये हुये मायाजाल में अपने पैर रखते हैं, वे उस तिलिस्माई अंधकूप में फंस जाते हैं, और आलोचक लोग उस 'विखंडन' के नाम पर जटिल-संकुल रचनाओं की तरह-तरह से सार-संक्षेप प्रस्तुत कर पाठकों को भरमाते और आत्ममुग्ध होते रहते हैं।

आशा की बात यह है कि आभा जी की कोई भी कहानी वैसी नहीं है । मैं दावे के साथ कह सकता हूँ—अन्ततः 'शिरीष की सुधा' कहानी-संग्रह की लेखिका एक महज मानवतावादी हस्ताक्षर हैं, उनकी कहानियाँ किसी भी विखंडन की प्रमाणपत्र नहीं हैं, अपितु सामाजिक यथार्थ तथा उसके बदलाव के चित्रण हैं। इनमें सामाजिक चेतना की प्रखरता के साथ-साथ संघर्षशील नारी का स्वरूप और सामाजिक परिवर्त्तन के स्पष्ट स्वर मिलते हैं। लेकिन ये कहानियाँ पढ़कर कतई यह

धारणा नहीं बनती कि, वे नारीवाद की रचनाकार हैं ।

आभा जी ने वाकई अपनी कहानियों में भारतीय समाज की शिक्षित और अशिक्षित नारियों के जीवन-संघर्ष को विषय बना कर अपने विचार प्रकट किए हैं, किन्तु धनेसरी का आजाद होना एक अलहदा नारी का आजाद होना नहीं, वह अपनी अस्मिता और स्वाभिमान की रक्षा के लिए शराबी पति को तमाचा मारकर चल देती, है—यह मानव-मुक्ति की कहानी है। विजेन्द्र नारायण जी, मुझे क्षमा करें, आप विद्वान हैं, किन्तु आपने 'घर और बाहर' उपन्यास की सही इन्टरप्रीटेशन नहीं किया। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कोई भी रचना में वैसे हाशिए का दर्शन पनपा ही नहीं। अन्ततः 'अपनी-अपनी वैतरणी' कहानी में रमण की समस्या और 'घर और बाहर' के नायक की समस्या एक होने पर भी दोनों के दर्शन अलग हैं। आभा जी की यह कहानी बहुत ही साधारण और स्पष्ट रूप से मानवतावादी कहानी है। आभा जी की कहानी 'निराशा', 'विधवा सुहागिन' भी इसी तरह सुनीता और ममता सिन्हा के अस्मिता तथा स्वाभिमान की रक्षा जैसे मानवीय दृष्टिकोण से लिखी गई हैं। मैं यहाँ पर कहानियों के तकनीकि वैशिष्ट्य तथा शिल्प की उत्कर्षना के बारे में बातें नहीं कर रहा हूँ।

'काला इन्द्रधनुष' एक उमदा कहानी है। मैं विजेन्द्र जी से सहमत हूँ कि इस संग्रह में 'औरत का प्रेत' ईर्ष्या की जबरदस्त विश्वसनीय कहानी है। दरअसल इस तरह की इर्ष्या कोई भी विवाहित पुरुष तथा नारी को प्रभावित कर सकती है, और उनके दामपत्य जीवन को तबाह कर सकती है। संदेह चीज ही ऐसी है। और यह भी मानता हूँ कि मनोवैज्ञानिक कहानी 'शिरीष की सुधा' ने आभा जी को एक अच्छे सधे हुए कहानीकार के रूप में प्रतिष्ठा प्रदान की है। 'भय' कहानी में लेखिका इकहरे दृष्टिकोण को प्रतिष्ठापित कर पाई है, कावेरी का भय और डॉ. सुधा के भय का द्वन्द्व सामाजिक स्थितियों की उपज है, जो कहीं पर असुरक्षा से पैदा हुआ और कहीं पर महत्वकांक्षा का परिणाम। डॉ. सुधा का आभा जी ने जिस तरह चित्रण किया है, जिस तरह 'काला इन्द्रधनुष' में कामदेव के माता-पिता कनकलता तथा देवकान्त की महत्वाकांक्षा को; घमण्डी कनकलता को जिस तरह लेखिका ने कामदेव

की तबाही को हेतु के रूप में स्थापित किया है, यह कोई भी नारीवादी द्वारा संभव नहीं होता। उनके दृष्टिकोण बहुत ही संकुचित रह जाते हैं। मुझे बेहद खुशी है कि आभा जी एक मानवतावादी लेखिका हैं। मेरे विचार से 'ताकि चन्दन जल न जाए' इस संग्रह की श्रेष्ठ कहानी है। क्योंकि पश्चिमी अलगाववाद तथा Alienation जिस तरह पीढ़ी-दर-पीढ़ी हमारे नागरिक जीवन को ग्रास रही है, लोगों को इस बात का अहसास ही नहीं होता कि उत्तर औद्योगिक समाज बौद्धिक तकनीकि के जरिए उनका विकास कम कर रहा है, अपना वर्चस्व अधिक कायम कर रहा है। स्वार्थी नागरिक Alienation से प्रभावित होकर अनजाने में ही एक अजीब भाषा में बात-चीत करते हैं। शब्दों से उनके सही अर्थ छीन कर उन्हें एक छद्म अर्थ पहना दिया है। हमारे संसद, संविधान, सहायता, कानून, जनहित, न्याय, अधिकार, जाँच, शपथ जैसे शब्दों के अर्थ बदल गए हैं। इन मानवीय मूल्यों का भ्रंश के ही आभा जी 'चन्दन जल जाने' के रूपक में प्रतिस्थापित कर पाई हैं। इसीलिए जब त्रिलोचन अपने पड़ोसी मित्र शनिचर को रोते हुए कहता है- ''....जानते हो शनिचर,.... जब उधर गाँव पर उस रात विपत्ति आई हुई थी, तब मेरा बेटा मेरा हाथ पकड़कर वहाँ जाने से रोक रहा था। वे अपराधी तो कुछ लूट कर चले जाते, और यह अपराधी-जो मुझे और फिर सारे गाँव को लूटना चाह रहा है-उससे तो हमारे गाँव के हजारों वर्ष की संस्कृति की सम्पत्ति ही खत्म हो जायेगी।'' इतने छोटे-से परिसर में लेखिका ने कितनी बड़ी बात लिखी है। मन में अक्सर एक प्रश्न पनपता है, क्या समय-प्रवाह में अपने को बह जाने देना या उसी के अनुरूप तर्क गढ़ना बौद्धिकों का एकमात्र कार्य रह गया है? आभा जी का यह विषय-चयन, संकुचित तथा निहित स्वार्थ में लिप्त होने का विरोध करना, मुझे अच्छा लगा।

यह सही है कि 'विखंडन' के सिद्धान्त ने जहाँ 'पाठ' को मुक्त किया, वहाँ 'सत्य' को भी फिर जागरूक किया। साथ ही 'सत्य' के सर्वानुमति सम्मत केन्द्रीय वृत्तांत के अतिरिक्त उपकेन्द्रों की तलाश शुरू हुई। परिणामतः उसे स्त्रियों, उपेक्षितों, दलितों, भाषायी समुदायों, यानी हाशिए के लोगों की दृष्टि से देखा जाने लगा। अब इनको इनके हाशियाकृत स्थिति से उबार कर केन्द्रों के समानांतर स्थापित करने की

कोशिशें जारी हैं। यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि 'विखंडन' की प्रक्रिया में न कोई प्रधान होता है, न गौण। अर्थ की लीला यह होती है कि एक ही 'पाठ' की दो या अधिक व्याख्याएं हो सकती हैं, जिनमें किसी भी उपकेन्द्र से देखा गया सत्य उतना ही वैध माना जाता है, जितना किसी भी अन्य केन्द्र से देखा गया सत्य।

इसमें संदेह नहीं कि हमारे चिन्तन को धार देने में पश्चिमी दर्शन और अन्य शास्त्रों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। बहुत-सी बातें हमारे विचार-तंत्र का हिस्सा भी हो गई हैं। किन्तु इसमें भी संदेह नहीं कि हमारी अस्मिता व सांस्कृतिक वैशिष्ट्य ही सृजन व समीक्षा का अनिवार्य संदर्भ है। हमारे पास भी चिंतन की समृद्ध विरासत है। क्या ग्लोबलाईजेशन तथा उत्तर-आधुनिकता के वार से (नारीवाद आदि जिसकी उपज है) हम, उसे अप्रासंगिक समझ बैठेंगे ? अपने सांस्कृतिक विरासत के चन्दन को जल जाने देंगे ? —कतई नहीं।

आभा जी ने इसी विचार को अपनी कहानी में उजागर किया है। पश्चिमी ज्ञान व विचार हमें समृद्ध करे, यह एक बात है और वे माडल बन कर हमारी पहचान को ग्रास कर लें, यह दूसरी बात है। त्रिलोचन के साथ सारे गाँव के गरीब अनपढ़ लोगों ने भी गणपत को माईनिंग इन्जीनियर बनाने में सहयोग दिया था, और उसी गाँव में डकैत घुस आने पर गणपत ने अपने पिता की बाँहें पकड़ कर रोकने की कोशिश की थी। इससे त्रिलोचन को दुख होना स्वाभाविक है। आभा जी की इस कहानी को मैंने बंगला में अनुवाद किया।

❐

शिरीष की सुधा : नारी चेतना और नारी शक्ति की कहानियाँ

—डॉ. प्रितपाल सिंह महरोक

हिन्दी में आज लिखी जा रही कहानी की बात करनी हो तो आभा पूर्वे की कहानियों की चर्चा किये बगैर बहस अधूरी रहेगी। उसने अपनी कहानियों में जिस शिद्दत और दिलेरी से नारी की सामाजिक, आर्थिक, नैतिक और सांस्कृतिक स्थिति का सर्वेक्षण प्रस्तुत किया है, वह आज के वक्त में विशेष बहस की माँग करने वाले पहलू हैं। स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के प्रसंग में नारी के मन के अन्तर की बेचैनी, घुटन, हलचल, कशमकश, मन के भीतर के आरोह-अवरोह और खुलेपन में विचरने की तमन्ना को उसने बहुत बेबाकी से अपनी कहानियों में प्रस्तुत किया है।

'शिरीष की सुधा' संकलन की अधिकतर कहानियाँ नारी मन की समस्याओं के इर्द-गिर्द घूमती हैं। मानव के खण्डित होते जा रहे अहं की वेदना भी ये कहानियाँ कहती हैं। इन कहानियों में कहीं मानव के विखंडित अस्तित्व का स्वरूप परम्परा के अधीन होकर चलता है और कहीं और जगह परम्परा से विद्रोह करके उससे टूटता दिखता है। इस प्रकार आभा पूर्वे की ये कहानियाँ मानव-मन के भीतरी सत्य तक पहुँचने का प्रयत्न करती हैं।

आभा पूर्वे की इन कहानियों के वस्तु-जगत का आधार-तत्व मानव-मन की वेदना, पीड़ा, तमन्ना, उसकी खुदगर्जी, मजबूरियाँ, आत्मग्लानियाँ, सब कुछ उसके मानसिक संकटों तक फैला हुआ नजर आता है। पुरुष और समाज के संदर्भ में, स्त्री और पुरुष के सम्बन्धों के परिप्रेक्ष्य में-आभा पूर्वे ने इन कहानियों में नारी की मूक वेदना की बात कही है।

'औरत का प्रेत' कहानी में सुनीता और उसकी दीदी का प्रेम-सम्बन्ध दीदी के पति कमल-कांत द्वारा अपनी साली सुनीता पर नजर रखने के कारण, घर में पैदा हुये तनाव के पश्चात लम्बी चुम्पी और ठंडे रिश्ते में परिवर्तित हो जाता है। अवसर मिलने पर जब कमलकांत एक बार सुनीता की कलाई पकड़ लेता है तो सुनीता अपने जीजा (बहनोई) की इस बदतमीजी को नापसन्द करती हुई उसके बारे में कठोर शब्दों का प्रयोग करती है। दूसरी तरफ, सुनीता की दीदी, सुनीता और अपने पति कमलकांत की बढ़ रही निकटता के सम्बन्ध में अपनी माँ को शिकायत के लहजे में बताती है। वह चेतावनी भी देती है कि सुनीता उसका घर बर्बाद न करे। दीदी की बीमारी के वक्त जब सुनीता उसके पास जा कर बोकारो में रहती है और उसकी सेवा में वक्त काटती है, तब वह दीदी के व्यवहार में आया परिवर्त्तन (अपने) खत में प्रकट करती है। सुनीता समझती है कि रिश्ते वास्तव में स्वार्थ के होते हैं। एक-दूसरे के बारे में शंका-भाव और अविश्वास जीवन को तबाह कर सकते हैं। रिश्तों के बदल रहे परिप्रेक्ष्य को यह कहानी बहुत खूबसूरती से प्रस्तुत करती है। लेखिका सुनीता जैसे पात्रों की मानसिकता के साथ चलती नजर आती है और फिर उनके भीतर के दर्द का अहसास करवाती है। इस प्रक्रिया में वह मानवीय चरित्र को अधिक महत्व देती है और फिर मानववादी कहानी लेखिका के तौर पर अपना गौरव बनाती है।

इसी संदर्भ में 'और धनेसरी आजाद हो गई' कहानी को देखा जा सकता है। धनेसरी का पति बिसेसर उसे घर में गुलाम बना कर रखता है। घर से बाहर जाने की बात करने पर उसकी जीभ काट देने की धमकी देता है। जब कोठरी भीतर का अन्धेर उसे खाने लगता है तो वह अपने पति को कहती है कि उसे मायके छोड़ आये। ठेला चलाने का काम करने वाला बिसेसर घटिया और सस्ती शराब पीकर आता और धनेसरी को पीटता है। धनेसरी एक वकील के घर बरतन साफ करने का काम करने का निर्णय करती है तो इसलिए भी उसे पति से दण्ड मिलता है। अकल की आँखें खुलने पर वह धनेसरी पर किये गए अत्याचार का पश्चाताप करता है। धनेसरी फिर भी उसे क्षमा नहीं करती और उसके मुँह पर एक थप्पड़ मार कर, अपने साहस, आत्मविश्वास, स्वाभिमान और

दृढ़ चित्त बनी रहने का सबूत देती है और बिसेसर की गुलामी से आजाद हो जाती है। अपने अधिकारों के बारे में जागरूकता का प्रकाश अब झोपड़पट्टी में रहने वाले लोगों तक भी पहुँच गया है और वे लोग भी सामाजिक-आर्थिक गुलामी से स्वतंत्र होने के लिए साहस जुटाने में लग गए हैं। नारियाँ इस क्षेत्र में विशेष रूप से अग्रसर हो रही हैं। नारी-चेतना की यह कहानी स्त्री को गुलामी के दुखांत में से निकलती हुई दिखाने की एक सफल कोशिश है। धनेसरी जैसे पात्र टुकड़ों में बँटे हुये होकर, तिनकों की भाँति विचरण करते हुये भी जीवन को बहुत बड़े अर्थ देने में समर्थ हैं। यह कहानी नारी-शक्ति का प्रतीक है।

आभा पूर्वे ने समकालीन जीवन-यथार्थ के विभिन्न पहलुओं को अपने दृष्टिकोण से देखने, परखने और समझने की कोशिश की है। मानवीय लालसाएँ, प्राप्तियाँ और दुर्बलताएँ अपनी अनेक परतों के साथ कलात्मक रूप में इस संकलन की 'शिरीष की सुधा' कहानी की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। सुधा लग्न और परिश्रम द्वारा पढ़ती है और कॉलेज में प्राध्यापिका बनती है। इस दिशा में उसके दूर के देवर का एक मित्र शिरीष उसका पथ-प्रदर्शन करता है । अपनी विद्वता, प्रतिभा और अध्यापन शैली द्वारा वह कॉलेज में अपना अच्छा प्रभाव बना लेती है। मगर वह शिरीष को अपने जीवन में से निकाल फेंकना चाहती है। इस सम्बन्ध में वह उसे स्पष्ट रूप से बता भी देती है कि वह सुधा को भूल जाए। पति से हीन-भावना का अहसास सुधा को अपने पति से आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है। परिश्रम द्वारा वह हीन भावना की इस ग्रंथी को सुलझाने की कोशिश करती है.....सुधा की शिरीष के प्रति कठोरता उसके चरित्र में असंतुलन लाती है। ऐसा चरित्र मानव को परिश्रम द्वारा कुछ बनने, विलक्षणता प्राप्त करने और अपने पाँव पर खड़े होने की प्रेरणा तो देता है, मगर उसकी कृतघ्नता उसके व्यक्तित्व पर प्रश्न-चिन्ह भी लगा देती है। उसकी दोहरी और भ्रामक मानसिकता मानवता को हानि पहुँचाती है।

'एक दिन का सुख' कहानी पैसे और पदार्थ की चमक-दमक को मानवीय सम्बन्धों से अधिक महत्व देने के बिन्दु पर खड़ी है। ये दोनों वस्तुएँ इन्सानी व्यवहार में बड़ा परिवर्त्तन लाती हैं। राकेश, खर्चीली लड़की लीना से शादी कर उसकी शाही खर्ची के लिए उसे कोई पैसा नहीं

देता। आवश्यक वस्तुएँ उसे खुद खरीद कर देता है। लीना राकेश के इस व्यवहार से परेशान होती है, मगर समय बीतने पर वह अपने ससुराल-परिवार में मन लगाने लगती है.....पांच वर्षों के पश्चात् लीना मायके जाती है तो पति की तनख्वाह के दस हजार रुपये उसके पास हैं। अपनी सहेलियों के साथ वह पुरानी स्मृतियाँ सांझी करती है और फिर खरीददारी के लिए जाने का प्रोग्राम बनाती है। घर के काम की कुछ चीजें खरीदने की सूची बनाती है, मगर बाजार जाकर चार हजार आठ सौ रुपये का शृंगार का सामान खरीद लाती है। वास्तव में लीना समझती है कि वह राकेश के घर में पाबंदियों और घुटन में रहकर जीवन व्यतीत करती है। घूमने जाने और खरीददारी करने का उसका पुराना शौक है। वह शौक फिर सर उठाता है और वह इस शौक की पूर्ति के लिए कुछ भी कीमत चुका सकती है.....

ससुराल की अथवा पति की गुलामी नारी के लिए बहुत बड़ा शाप है.....

कहानी के अन्त में लीना जो प्रश्न अपने पति से पूछती है कि क्या नारी अविवाहित रह कर जीवन नहीं गुजार सकती ? यह प्रश्न उसे स्वयं से पूछना चाहिए था। इंसान के सम्बन्ध निजी गरजों में जकड़े हुये हैं और सम्बन्धों में बनावट आ गई है। लालसाओं के कारण रिश्तों में कड़वाहट भर गई है। लीना का अन्तरविरोध ही इस कहानी की धूरी बनता है।

'अपनी-अपनी वैतरणी' कहानी खुदगर्जी के दौर में आत्मसुख के व्यवहार की बात करती है। पदार्थवादी युग में पैसे की कदरें कीमतें और स्वाभिमान जब अहं से टकराते हैं तो रिश्तों का सद्भाव खत्म हो जाता है, रिश्ते टूट जाते हैं। पति रमन की खोखली मर्द-अहं-भावना अपनी पत्नी रश्मि के किसी पुरुष से बात कर लेने को भी सहन करने के लिए तैयार नहीं है। दफ्तर में काम करती अपनी पत्नी को वह नौकरी छोड़ देने को कहता है और उसके वेतन पर आश्रित रह पाने को अपमान समझता है। रश्मि अपने बच्चों का भविष्य बर्बाद होता नहीं देख सकती। मानसिक तौर पर बीमार और सनकी स्वभाव का रमन घर छोड़कर चला जाता है। रमन का घर छोड़कर चले जाना, जीवन से पराजित होकर, इससे दूर चले

जाने का संकेत है। रश्मि परिश्रम और संघर्ष द्वारा वैतरणी को पार करने में विश्वास रखती है, जबकि रमन जीवन की वास्तविकता से मुख मोड़ कर किसी सुनी-सुनाई कथा में से सन्तोष ढूंढने का भ्रम पालता है।

आभा पूर्वे नारी के निम्न चेतन मन में दबी हुई रूचियों, उमंगों और अतृप्तियों को समझने का प्रयास करती है। इस प्रयास में से उनकी कहानियाँ जन्म लेती हैं। नारी-मन की पीड़ा के संग निजी साँझ बनाकर आभा पूर्वे उसके भीतर से फूट निकलने वाले ज्वार-भाटा को रूपमान करने की कोशिश करती है । नारी मन की अस्थिरता से भी वह परिचित है। 'ऋणी' कहानी की नायिका अपने घर को छोड़, घर की मर्यादा को तोड़कर अपने प्रेमी संग भाग कर अस्थिर मन का परिचय देती है। अपने प्रेमी विष्णुकांत के साथ भाग कर चले जाने का उसका कर्म नैतिक है अथवा अनैतिक ? उसका आचार्य उसकी दीदी को पढ़ाने के लिए पहले की तरह उसके घर आता-जाता होगा अथवा नहीं ? ये प्रश्न उसे परेशान करते हैं। अपने इन भावों को वह अपने आचार्य को एक पत्र में लिखती है। पत्र-शैली में लिखी गई इस कहानी में प्रारम्भ से आखिर तक उत्सुकता बनी रहती है। नारी अपनी खो चुकी पहचान की तलाश में भटकती दिखाई देती है । उसके भीतर का तनाव और टूट जाने का भाव उसे चैन नहीं लेने देता। घर का मोह-भंग और प्रेमी का सुखद-साथ भी उसे स्थिर अवस्था में नहीं रहने देता ।

'अनकही कथा' भी पत्र-शैली में लिखी गई खूबसूरत कहानी है। दामिनी अपनी बालसखी नीरू को पत्र लिखती है जिसमें उसकी ओर से पूछे गए कुछ प्रश्नों का उत्तर दिया जा रहा है। पत्र में दामिनी कुछ आपबीतियाँ लिख रही है। देबू के संग अपने प्रेम-सम्बन्ध के बारे में, अपनी दीदी के देवर द्वारा एक बार उसकी कलाई पकड़ लेने की घटना के बारे में, देबू की उसके प्रति तीव्र प्रेम-इच्छा के बारे में, देबू की तरफ से उसके भावी पति की प्रशंसा किये जाने पर, पल्लवपाल से अपना विवाह होने के सम्बन्ध में, ससुराल पहुँचते ही देबू के मृत्यु की खबर मिलने के बारे में, देबू के शव से लिपट कर फूट-फूट कर रोने के बारे में और देबू की मृत्यु पर की जाने वाली टिप्पणियों को लेकर-सब कुछ ही पत्र द्वारा प्रस्तुत किया गया है। वास्तव में कहानी दामिनी के प्रेम-सम्बन्ध की

सिमृतियों की कथा है। पल्लवपाल के साथ उसका विवाह हो जाने के पश्चात् उसका विवाहित जीवन कैसे व्यतीत होता है अथवा कैसे व्यतीत होगा, इस सम्बन्ध में कहानी में कुछ भी संकेत नहीं है.....विवाह के पश्चात दामिनी का जीवन कैसे चला ? इस सम्बन्ध में भी कुछ संकेत मिलते तो कथा का अर्थ-विस्तार हो सकता था। इस तरह कहानी के अतीतमुखी होने के साथ-साथ नायिका का भविष्यमुखी समस्याओं के रू-ब-रू खड़ी होने का दृश्य भी दिखाया जा सकता था।

'भय' कहानी में नन्दिता और जयकांत की बेटी कावेरी यौवन की दहलीज पर पाँव रख कर अजीब किस्म के सहम में घिर गई है। माँ उसे उसकी नई उम्र की जिम्मेदारियों के बारे में अहसास करवाती रहती है और उसे गम्भीर रह कर, घर में ही रहने का आदेश दे कर बाहर न जाने की हिदायत करके भयभीत करती है। .....एक कलयुगी पिता द्वारा अपनी मासूम बच्ची के साथ किये गए कुकर्म के बारे में अखबार में पढ़कर मासूम कावेरी पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है। वह अपने ही घर में भय और आतंक के साये में जीने के लिए विवश है। मानव जब अपना सौम्य स्वभाव छोड़ कर राक्षस बन जाता है तो मानवता कलंकित हो जाती है। यह कलंक नैतिक और स्वस्थ जीवन-मूल्यों के साथ जुड़े हुये समाज के लिए शर्मिंदगी का मुकाम बनता है। कावेरी के भय को कुछ अधिक बढ़ा-चढ़ा कर पेश करना इस कहानी की खामी है, मगर फिर भी लेखक इस तरह करते ही हैं। इसीलिए यह कहानी सामाजिक जीवन की विकृत और विनाशक भावनाओं को लोगों के सामने पेश करके, अपने लक्ष्य में सफल है। मानवता इस कदर गिरती जा रही है कि खुद मानव ही जीवन के स्वस्थ स्वरूप को विकृत किये जा रहा है। समाज के बुद्धिजीवी वर्ग के लिए यह कहानी एक चुनौती है।

'काला इन्द्रधनुष' कहानी में देवकांत अपने बेटे को अफसर बना देखने की इच्छा रखता है। माँ कनकलता अपने बेटे कामदेव को अधिक-से-अधिक पैसे कमाने वाला वकील बनाने की कामना करती है। माँ को मायके की सामाजिक प्रतिष्ठा, राजनीतिक गौरव और पैसे का अहंकार है। वह पति को अपने अधीन बनाए रखने में खुशी अनुभव करती है। दस वर्ष के अन्तराल के बाद पति किसी दूर के शहर में बदली करवा कर

चला जाता है और पत्नी मायके रहती है। बेटा अलग रहता है। सड़कों-गलियों में आवारा घूमता है और मानसिक संतुलन खो देता है। तीस वर्ष की आयु में बूढ़ा दिखने लगता है। उसके भीतर एक महाभारत वर्त्तमान है। काले इन्द्रधनुष की भान्ति कामदेव किसी को भी अच्छा नहीं लगता। पति-पत्नी के सम्बन्ध सुखद न हों तो घर का माहौल बिगड़ जाता है और उसका बच्चों पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

'ताकि चन्दन जल न जाय' कहानी ग्रामीण संस्कृति की पृष्ठभूमि में एक महत्वपूर्ण बिन्दु पर केन्द्रित है कि गाँव के लोग एक-दूसरे के दुख-सुख के हिस्सेदार होते हैं। गाँव पर बनने वाले किसी भी संकट के समय वे अपना योगदान देकर खुश होते हैं, मगर पढ़ी-लिखी नई पीढ़ी इस तरह की संस्कृति से अनभिज्ञ है। गाँव पर संकट आने पर ये नए लोग कायरों की भाँति स्थिति से विमुख होकर पलायनवादी बन जाते हैं।

आभा पूर्वे की इन कहानियों की नारी अनेक जगहों पर पुरुष के अत्याचार सहती है, सामाजिक अत्याचार का शिकार बनती है। कहीं वह पिता, पति, प्रेमी, जीजे, वगैरह के दवाब के तले पिसती है और कहीं अपने भीतर के खालीपन में भटकती है। वह इस सिस्टम के विरूद्ध आवाज भी उठाती है और संघर्ष भी करती है, लड़ती है, जूझती है। अपने साथ होने वाले दुर्व्यवहार के विरुद्ध विद्रोह करती है। इन कहानियों में आने वाली नारी सामाजिक दम्भ, छल-कपट और विकृतियों का विरोध करती है। आर्थिक दौड़ वाले इस युग में वह नारी रिश्तों की कैद में भी फँसी हुई है, रिश्तों की मर्यादा को भी वह निभाती है, मगर सर्द रिश्तों को तोड़ने से भी संकोच नहीं करती। रिश्तों की जकड़न में से पैदा होने वाली तलखियाँ इन कहानियों का सरोकार है। आभा पूर्वे अपनी नायिकाओं के मन में आत्मविश्वास पैदा करने की कोशिश में ही रही हैं। इसी तरह वे जीवन स्थितियों से जूझने में समर्थ हो पायेंगी।

इन कहानियों में औरत को दरपेश समस्याओं में से निम्नलिखित पहलू उभर कर सामने आते हैं,

(१) ये औरतें सामाजिक-आर्थिक बराबरी के लिए जूझती हैं। ये सामाजिक-आर्थिक परिवर्त्तन की तमन्ना रखती हैं और उसके लिए कुछ भी कीमत देने के लिए तैयार हैं।

(२) अपने भीतर की हीन भावना (अगर कोई है) को दूर करने के लिए और उसमें से उभरने के लिए कठिन परिश्रम करती हैं, संघर्ष भी करती हैं।

(३) ये नारियाँ पढ़ी-लिखी हैं अथवा नहीं, हर हालत में आजादी चाहती हैं। पुरुष की गुलामी के बन्धन इन्हें स्वीकार नहीं हैं।

(४) जीवन-साथी के चुनाव के लिए घर-परिवार की परम्परा-मर्यादा को तोड़ने से संकोच नहीं करतीं।

(५) अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए नारियाँ पुरुष-प्रधान समाज से कठोरता का व्यवहार करने से हिचकिचाती नहीं हैं।

(६) अपने बारे में खुद निर्णय लेने का साहस रखती हैं।

(७) ये स्त्रियाँ शिक्षित होकर नारीत्व को बर्बाद करने वाले पुराने सामाजिक-सांस्कृतिक संस्कारों को तोड़ने के लिए प्रयत्नशील हैं।

(८) नारी-मुक्ति के लिए इन नारियों की ओर से किये गए संघर्ष हमारा ध्यान माँगते हैं, मगर समाज से टूट कर इस मुक्ति का कुछ भी अर्थ नहीं है।

अपनी स्वाभिमान विहीन आदतों/रूचियों/धारणाओं में जकड़ी रहकर अगर ये नारियाँ मुक्ति और प्रसन्नता की तलाश करती हैं तो भ्रमजाल में फँसी हुई हैं..... 'काला इन्द्रधनुष' की कनकलता और 'एक दिन का सुख' की लीना अपने जिद्दी और कठोर व्यवहार के कारण अपना घर नहीं बसा पाईं और आदर्श पत्नियाँ नहीं बन सकीं। अगर इन्होंने अपने व्यवहार में लचीलापन बनाए रखा होता तो इनके जीवन का रुख कुछ और ही होता।

(९) अपने हितों की रक्षा में कई बार ये नारियाँ अपने पथ-प्रदर्शक अथवा अगवानी करने वाले के अहसानों को भूल कर कृतघ्नता का व्यवहार करती हैं। सुधा का व्यवहार स्वस्थ सामाजिक-नैतिक मूल्यों के अनुरूप नहीं दिखता।

मनोवैज्ञानिक समस्याओं को आधार-भूमि बनाकर लिखी गई इन कहानियों की सामग्री को प्रस्तुत करने के लिए विभिन्न कथा-शैलियों का प्रयोग किया गया है। इन कहानियों की रूप-विधियाँ इस बात की गवाही देती हैं कि आभा पूर्वे को आज की कहानी की मॉडल-चेतना का पूर्ण बोध

ा है।

इन कहानियों में से प्रबुद्ध हिन्दी कहानी के मैकेनिज्म के दर्शन होते हैं । इनमें से अधिक कहानियों का प्रकटाव-माध्यम आज की कहानी के मॉडल के अनुरूप ही है। इन कहानियों का काव्यमय अंदाज और नाटकीय प्रकटाव इनकी विशिष्ट प्राप्ति बनने वाले गुण हैं। कुछ जगहों पर केवल 'अहसास' और उनकी अभिव्यक्ति ही सारी कहानी के निर्माण का आधार बनती है। अधिक कहानियों की संरचना विशेष कार्य-सूत्र में बंध ाकर की गई है।

मानसिक वातावरण का निर्माण करने में आभा पूर्वे को कमाल हासिल है।

इन कहानियों की विशेष खूबी यह है कि लेखिका के पास भाषा की समर्थता है, जिस द्वारा वह किसी लघु घटना, लघु विचार, लघु समस्या को महत्वपूर्ण बना कर विशाल कैनवेस पर चित्रण करने का सामर्थ्य रखती है। कहीं-कहीं सम्बोधनी शब्दों द्वारा भी कहानी का निर्माण किया गया है। उसकी शैली की तीव्रता कहानी की रचना-प्रक्रिया का विशेष गुण बनती है। उसके पास अपनी बात कहने का विलक्षण मुहावरा है।

इन कहानियों में जो कुछ कहा गया है, उसके साथ जो कुछ नहीं कहा गया-वह भी लेखिका की प्राप्ति है। कुछ-कहा, बहुत कुछ अनकहा!

इस कहानी-संग्रह द्वारा आभा पूर्वे हिन्दी कहानी में अपनी विलक्षण पहचान बना रही कथा-लेखिका के तौर पर सामने आई है। ❐

पंजाबी से अनुवाद : जसवन्त सिंह विरदी

'अपनी-अपनी वैतरणी' सामाजिक संदर्भ में

—श्रीमती सुचिन्द्र कौर 'फुल्ल'

आभा पूर्वे आज हिन्दी-अंगिका साहित्य में एक चर्चित और सम्मानित हस्ताक्षर हैं।

आज के लेखक अनेक प्रकार के षड्यंत्र करके चर्चा में, फोक्स में रहने की कोशिश करते हैं, मगर षड्यंत्र के कारण शायद ही कोई लेखक सफल हो पाया हो। सम्मान तो ऐसा कोई लेखक अर्जित कर ही नहीं सकता.....। यह सत्य है कि सम्मान प्राप्त करने के लिए लेखक में प्रतिबद्धता होनी चाहिए और उसे निरन्तर लोगों के लिए लिखता रहना चाहिए—बिना किसी प्रकार की इच्छा के। जैसे भगवान कृष्ण गीता में कहते हैं-फल की इच्छा किए बिना ही निष्काम भाव से कर्म किए जा—

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्।'

श्रीमती आभा पूर्वे एक ऐसी ही निष्ठावान् लेखिका हैं। उन्होंने निरन्तर बिहार की नारी की पीड़ा को शब्दों का रूप देकर हिन्दी के विश्व को बिहार की नारी की कथा-व्यथा सुनाई है।

कहानी-साहित्य की वह विधा है, जिसमें जीवन के किसी एक पल, किसी एक घटना या जीवन के किसी एक रंग को कथाकार अपनी कल्पना के रंग से चित्रित करके प्रस्तुत करता है। लेखिका स्वयं कहती हैं कि 'मुझे जब किसी बात ने परेशान किया, उसे ही कहानी में बाँध दिया। कहानी बनी तो ठीक, नहीं बनी तो दुख नहीं।'

मेरे हाथ में बिहार की चर्चित लेखिका श्रीमती आभा पूर्वे का कहानी-संग्रह 'शिरीष की सुधा' है, जिसमें उनकी ग्यारह कहानियाँ सम्मिलित हैं। अधिकतर कहानियाँ नारी-जीवन से जुड़ी हुई हैं। आभा जी ने अपनी इन कहानियों में नारी-जीवन के कतिपय अत्यन्त मार्मिक प्रसंगों

को अत्यन्त सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया है।

'अपनी-अपनी वैतरणी' कहानी एक शिक्षित दम्पत्ति के जीवन से जुड़ी हुई कथा है। इसमें एक ही बात के अनेक पहलुओं को उजागर किया गया है। मूल विषय है-इस पुरुष-प्रधान समाज में स्त्री-पुरुष के मध्य पैदा होने वाला द्वन्द्व । यह द्वन्द्व इसलिए है कि पुरुष समझता है कि वही श्रेष्ठ है। सभी काम उसकी इच्छानुसार ही होने चाहिए-चाहे वह अशिक्षित हो, बेरोजगार हो और पत्नी की कमाई पर ही गुजारा क्यों न करता हो । उन दोनों पति-पत्नी की अपनी-अपनी विचारधारा ही उनकी अपनी-अपनी वैतरणी है, जिसको लाँघे बिना उनकी जीवन-नैया किनारे नहीं लग सकती। यही वैतरणी उनके बीच में आ गई है..... उसे लाँघ पाना कठिन हो गया था!

हिन्दू शास्त्रों के मतानुसार वैतरणी खून-माँस की वह नदी है, जिसे गाय की पूँछ पकड़ कर ही पार उतरा जा सकता है। प्रत्येक हिन्दू जन का यह प्रयत्न होता है कि वह मरने से पहले एक गऊ अवश्य दान कर देवे, ताकि उसकी पूँछ पकड़ कर वह वैतरणी नदी पार करके स्वर्ग पहुँच सके। मुंशी प्रेमचंद जी ने तो इस विषय पर एक महान उपन्यास की रचना कर डाली। उनके 'गोदान' का होरी गऊदान की चाह मन में लिए ही स्वर्ग-सिधार जाता है, परन्तु गरीबी के कारण गऊदान नहीं कर सकता।

इस कहानी में दो-तीन पात्रों के माध्यम से ही कथाकार ने अपनी बात बहुत कुशलता से कही है। रश्मि एक दफ्तर में कार्यरत है और उसका पति रमण आजकल बेरोजगार है। वह मर्द बेकार होकर भी पत्नी का नौकरी करना सहन नहीं कर पाता, मगर पत्नी भी नौकरी करने के लिए डटी हुई है। जब तक वह आर्थिक-रूप में आत्मनिर्भर नहीं होती, उसका अस्त्वित्व सुरक्षित नहीं हो सकता।

रश्मि सुबह उठ कर हैल्थ-क्लब जाती है, फिर तैयार होकर आफिस जाती है। रमण के पास और कोई काम नहीं है-सिवाय रश्मि की प्रतीक्षा करने के। रश्मि का किसी पर पुरुष के संग आना-जाना या हँस कर बात करना उसे पसंद नहीं है। अपनी तनिक भी उपेक्षा सहन न करता हुआ वह क्रोधित होकर कहता है-'यह अपने आप को समझती क्या है।

नौकरी करती है तो इसका मतलब यह तो नहीं कि वह मेरा सम्मान ही न करे।..... अपने यहाँ तो पति को परमेश्वर माना गया है। चाहे वह अपंग हो, शराबी हो या निकम्मा हो, मैं तो कम-से-कम कुछ भी नहीं हूँ. .....मैं तो मर्द हूँ।..... जैसा मैं चाहूँगा, उसे वैसा ही करना पड़ेगा !... ...ये ठीक है कि मुझे नौकरी नहीं है, तो इसका मतलब यह तो नहीं कि मैं भीतर-ही-भीतर रोज-रोज मरता रहूँ। उसे अब नौकरी से हटा ही देना होगा।..... कल से रश्मि का आफिस जाना बंद।' बस यही है रमण की वैतरणी कि वह मर्द है, पति-परमेश्वर है। पति चाहे निकम्मा ही क्यों न हो, उसके सामने उसकी पत्नी की स्वतंत्रता कोई अर्थ नहीं रखती। उसका आर्थिक आधार भी कोई अर्थ नहीं रखता।

रमण का क्रोध सहन करके भी रश्मि वैसी-की-वैसी ही स्वाभाविक बनी रहती है। उसकी अपनी ही मान्यता है। उसका कहना है—''नौकरी तो मैं किसी कीमत पर नहीं छोड़ सकती। नौकरी छोड़ने का अर्थ समझते भी हो-इन छोटे-छोटे बच्चों के भविष्य को जान-बूझ कर नरक में धकेल देना। अगर मैं नौकरी छोड़ देती हूँ तो परिवार भर के लिए अन्न? बच्चों की स्कूल फीस? पुस्तकें? ड्रेस? और घर भर की ये सारी सामग्रियाँ ? कल से पत्नी और बच्चों सहित फुटपाथ पर घूमते नजर आओगे।..... .. पुरुषार्थ का अर्थ सिर्फ बच्चों को जन्म देना नहीं है, बल्कि उनके सम्पूर्ण विकास को चुनौती के रूप में स्वीकारना भी होता है। रमण, मैं नौकरी तुम्हारे लिए नहीं, अपने लिए नहीं, इन बच्चों के लिए कर रही हूँ। सिर्फ अपने मातृत्व के उतरदायित्व को पूरा करने के लिए।.....तुम्हारी कुंठा तुम्हें इतनी संकुचित कर रही है कि तुम अपने को और मुझको सही ढंग से समझ नहीं पा रहे हो!'' बस यही है रश्मि की वैतरणी। वह उन दायित्वों को निभाने का प्रयत्न कर रही है, जिन्हें निभाने की जिम्मेदारी पुरुष की है, मर्द की है, परन्तु वह तो अपने ही अहं में खोया हुआ है। ईष्या, द्वेष और कुंठित भावनाओं से ग्रस्त है। परन्तु रश्मि के वाक्-बाणों द्वारा आहत वह तिलमिला उठता है। अब उसे चैन कहाँ। फिर अपनी गलती का एहसास करके वह कह उठता है, 'कहीं गुस्से में रश्मि कुछ कर तो नहीं लेगी। क्या ठिकाना.....मुझे भी ऐसा नहीं करना चाहिए था।' फिर भी वह अपना ही पलड़ा भारी रखता है, 'लेकिन उसकी यह हरकत

भी तो बर्दाश्त नहीं की जा सकती। कल हम पति-पत्नी होकर भी अजनबी बन सकते हैं।.....'

कहानी का थीम ऊपरी नजर से देखने पर तो बहुत ही छोटा है, परन्तु वास्तव में यह आधुनिक युग की अत्यन्त गंभीर समस्या बन चुका है। प्रत्येक वह घर-जहाँ औरत काम करती है, उसमें यही नाटक खेला जाता है। लेखिका ने बहुत ही सरल, सुन्दर और स्पष्ट शब्दों में और अति संक्षिप्त रूप में इस विशालकाय समस्या को हमारे विचार हेतु प्रस्तुत किया है।

लेखक का काम लोगों को बदलने के लिए चुनौती देना ही है अर्थात् वह लोगों को बदलाव के लिए मानसिक रूप से तैयार करता है। श्रीमती आभा ने यह एक अत्यन्त जरूरी काम-बिना किसी तरह की भावुकता और आवेश के—सहज रहकर, सफलता-पूर्वक किया है।

❐

आभा पूर्वे की कहानियों को पढ़ते हुए

—पी. एन. जायसवाल

कहानी शब्दों, वाक्यों और सुन्दर शिल्प का संयोजन मात्र नहीं है, जो पढ़ने-सुनने में मोहक लगे या मनोरंजन करे। सच तो यह है कि कहानी को हाथ, पाँव, एक अदद दिल और विशाल सोच होता है। कहानी साँस लेती है, बोलती है और जरूरत पड़ने पर मानवीय समृद्धि के लिए अपने अंदर के 'तथ्यों' जैसे हथियार के साथ खड़ी होती है, हमले करती है। साहित्य की सक्षम लेखनी इसके गवाह हैं।

कहानी स्वतः स्फूर्त होती है। कथाकार उसे टेढ़े-मेढ़े, अनगढ़े रास्ते से उतार कर सपाट-सुन्दर और जरूरी रास्ते दे कर मूल्य के सूक्ष्म बिंदु पर खड़ा कर देता है।

आभा पूर्वे की कहानियाँ ऐसे ही बिन्दुओं पर खड़ी अपनी बात कहती है। अलग-अलग दृष्टिकोण को रख कर बुनी गईं इन कहानियों में कहीं नारीवाद प्रबल होता दिखता है, कहीं कथा-लेखिका प्रेम-विश्वास-घृणा के त्रिकोण पर स्पंदित होती जीवन के सूक्ष्मतम 'लय' को उभारती है, कहीं मनोविज्ञान के धरातल में सूराख कर जीवन की जटिलताओं को विश्लेषित करती प्रतीत होती है। ऐसे में इन कहानियों को उनकी श्रेष्ठता-माप के लिए एक-दूसरे के लंबवत खड़ी नहीं किया जा सकता है।

आभा पूर्वे की 'सुधा' अपने शिरीष की रह पाई तो—यहाँ मनोवैज्ञानिक जटिलता दिखती है, सामान्य पठन-पाठन में यह घृणास्पद लगती हो, पर सुधा की घृणा मनोवैज्ञानिक गुत्थियों की पराकाष्ठा है। सुधा के मन की ग्लानि की क्षति-पूर्ति के लिए इस कहानी का यही अंत अनिवार्य था। कथा-लेखिका के हृदय में गहरे प्रकाश की अनुभूति ने ही इस कथा को समृद्ध किया है।

'और धनेसरी आजाद हो गई' स्वाभिमान के स्पन्दन की कहानी है, जो हर आदमी के भीतर स्पंदित होता रहता है (पर विरले ही इसे तरजीह देता है)। धनेसरी ने अपने पति के गाल पर तमाचा मार कर कहा '.....हमारे तन और मन को हमारे खिलाफ हो कर कोई छू नहीं सकता. .....।' यह वाकया एक तरफ पुरुष के अहंकार पर अंगुली उठाती है, दूसरी तरफ नारी की व्यथा को प्रसव करता है, जो 'आदम-हौवा' के युग से आज तक होता आया है। ऐसे में ये वाक्य नारी स्वतंत्रता के उद्घोष करते प्रतीत होते हैं। ऐसी कहानी को मात्र नारीवाद की कहानी कह देना समीक्षात्मक न्याय नहीं है। इस कहानी को क्या अस्तित्व रक्षा की कहानी नहीं कही जायगी? आदमी का स्वाभिमान तो देने स्प्रींग पर बैठा होता है। आभा की सुनीता का अपने बहनोई कमलाकान्त के रिते की गर्माहट/ठंडापन उतना बड़ा सच नहीं है, जितना कि स्त्रियों का स्त्रियों के प्रति शंका और अविश्वास। ईर्ष्या-नारीसुलभ होने के कारण 'औरत का प्रेत' की तरह है। इस कहानी में एक पंक्ति है—'मर्द के लिए कोई बंधन नहीं होता, बंधन तुम्हारी जैसी लड़कियों के लिए जरूरी है, नहीं तो औरत इस धरती पर सही-सलामत न रहे.....।' सामाजिक व्यवस्था पर यह पंक्ति दूधारी तलवार की तरह है।

आभा पूर्वे की कहानियाँ समाज की विसंगति को उजागर करती असंतुलित ढाँचे पर चोट करती हैं। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करती हैं, पुरुष और स्त्री के बीच अव्यवस्थित संस्कार, स्त्री के अंदर दबाये, दबते विद्रोह अथवा लक्ष्यहीन भटकाव के बीच नारी के मूल्य, पारिवारिक चेतना, परिवर्त्तन और सम्बन्धों के लिए संघर्ष करती हुई दिखती हैं। सरलतम भाषा और ताम-झाम से अलग ये कहानियाँ निश्चित रूप से साहित्य-कोश के लिए संग्रहणीय होंगी।

❐

आभा पूर्वे का कथा-साहित्य

—अनिरुद्ध प्रसाद विमल

डॉ. आभा पूर्वे हिन्दी और अंगिका भाषा की समर्थ लेखिका हैं। इनका साहित्यिक व्यक्तित्व बहुआयामी है। कविता, कहानी, उपन्यास के साथ संपादन के क्षेत्र में भी दर्जन भर इनकी प्रकाशित पुस्तकें हैं। यहाँ मूल रूप से इनके कथा साहित्य पर विचार करना है। परबतिया, अंतहीन वैतरणी, गुलबिया कुल मिलाकर तीन इनका अंगिका भाषा में प्रकाशित उपन्यास हैं। हिन्दी में 'कुँवर विजयमल' इनका सद्य प्रकाशित उपन्यास है। 'चन्दन जल न जाए' और 'शिरीष की सुधा' दो कहानी संग्रह प्रकाशित है।

जैसा कि अक्सर होता है, कहानीकार उपन्यासकार भी होता है। उपन्यास और कहानी दोनों ही सजातीय कथाविधाएँ हैं। किन्तु उपन्यास का कथाफलक जहाँ विस्तृत होता है, वहाँ कहानी का अपेक्षाकृत संकेन्द्रित। कोई विषय लेखक के मन में जब विस्तार पाने लगता है और यह जब सामाजिक सरोकार से जुड़ जाता है तब वह उपन्यास लेखन पर उतर आता है। समाज संक्रमित हो रहा है। आभा पूर्वे ने अपनी कहानियों में इस पक्ष को बड़ी मजबूती से उकेरा है। कहानी के विषय में इस सत्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि कहानी किसी भी लेखक के इर्द गिर्द घूमती रहती है, उसके बेहद आसपास, यहाँ तक कि कहानी लेखक के जेब में होती है। उसे पकड़ने की क्षमता लेखक में होनी चाहिए। यह क्षमता लेखिका आभा में है। 'शिरीष की सुधा' और 'चन्दन जल न जाए' संग्रह की सभी कहानियां ऐसी ही हैं। कहानियों की कसावट और बुनावट ऐसी है कि पाठक पढ़ने को विवश हो जाता है। यह आभा पूर्वे की कहानियों की सबसे बड़ी खासियत है। इनकी कहानियों का अंत झकझोर

कर रख देता है। 'धनेसरी आजाद हो गई' और 'भय', इनकी अलग किस्म की कहानी है जिसमें नारी विमर्श एक चुनौती के रूप में अभिव्यक्त है। स्त्री जीवन का पूरा यथार्थ इन कहानियों का केन्द्रीय भाव है। यहाँ सीधे एक स्त्री का हृदय बोलता है। लेखिका ने धार्मिक सकीर्णताओं और अंध धारणाओं का अनावरण किया है। स्त्री विमर्श में सामाजिक विडम्बनाओं की बेड़ियों में तड़पनेवाली स्त्रियों पर लेखिका ने गंभीरता से विचार किया है।

अपने उपन्यासों में भी लेखिका डॉ आभा पूर्वे ने इस चुनौती को स्वीकार किया है। 'गुलबिया' उपन्यास में उसकी नायिका गुलबिया अपने पति को छोड़कर प्रेमी के साथ भाग जाती है। 'अंतहीन वैतरणी' और 'परबतिया' उपन्यास में नारी जीवन की व्यथा कथा बड़ी ही मार्मिकता के साथ चित्रित है। 'कुँवर विजयमल' शिल्प की दृष्टि अद्भुत उपन्यास है। इस उपन्यास में लेखिका डॉ. आभा पूर्वे का अभिव्यंजना कौशल हिन्दी साहित्य के उपन्यासों के लिए भी उदाहरणीय है। उपन्यासकार ने लोकगाथा के नायक कुँवर विजयमल की कथा को माध्यम बनाकर उपन्यास को घटना वैचित्र्य से ऐसा रोचक बनाया है कि कथा का माधुर्य बढ़ गया है। विलक्षणता के इस प्रारूप में आभा अन्यतम है। लेखिका के उज्ज्वल भविष्य की हार्दिक शुभकामनाएं।

❐

आभा पूर्वे की लघुकथायें

—आशीष सिन्हा 'कासिद'

साहित्य की किसी भी विधा में किसी भी रचनाकार की कृति की लोकप्रियता का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण है रचना की सरलता या बोधगम्यता। रचनाएँ जब सहजग्राह्य होती हैं तो न केवल पाठकों को अनायास अपनी ओर खींचती हैं, अपितु अन्त तक पढ़ने के लिए बाध्य भी करती हैं। हम सभी जानते हैं कि सरल शब्दों में अपनी बात को संदेशात्मक और तथ्यपरक बनाते हुए प्रभावी ढंग से पाठकों के समक्ष रखना अपेक्षाकृत उस कार्य से कठिन है, जिसमें लेखक निरंतर शब्द-कोश से सम्पर्क स्थापित करने के लिए कहता है।

डॉ. आभा पूर्वे की लघुकथाओं को पढ़ने के बाद कुछ ऐसा ही प्रतीत होता है। लेखन की रवानगी और शब्दों का अनुकूल चयन कहीं भी पाठन में अवरोध पैदा नहीं करता। कहीं भी ऐसा भान नहीं होता कि यहाँ तारतम्यता का अभाव है। कहीं-कहीं अंगिका शब्दों का चयन तो रोचकता में एक तरह से अलंकार का काम करता है।

लेखिका की लघुकथाओं की विषय-वस्तु का चरित्र भी असाधारण है। उनका कथानक पूर्णतया ग्रामीण परिवेश के इर्द-गिर्द ही घूमता है। वर्तमान हिन्दी साहित्य अब गाँवों में सिमटता जा रहा है। अतः अधिकांश पाठक भी अब गाँवों में ही रह गये हैं। ऐसे में लेखिका की लघुकथाओं का महत्व और भी बढ़ जाता है।

लघुकथाओं की एक और विशेषता यह होती है कि पाठक जिस प्रकार के अन्त की कल्पना करता है, उससे एकदम परे चली जाती है लघुकथाकार की सोच। और यह सोच पाठक को एकदम चौंका देती है। इसी बिन्दु पर रचनाकार की रचना उत्कृष्टता को स्पर्श करती है। यह

बात भी डॉ आभा पूर्वे की लघुकथाओं में परिलक्षित होती है।

"मंगल का फ़ैसला'' पढ़ते हुए प्रारंभ में ही अब्दुल एक हैरतअंगेज़ ख़बर मंगल को सुनाता है और मंगल सुनकर ज़रा भी हैरान नहीं होता। यहीं लघुकथाकार की सोच बिल्कुल अलग मालूम पड़ती है और संभवतः यही बात कहानी को एक ऐसा विस्तार देती है, जो पाठक को आख़री तक बाँधे रखती है।

लघुकथा "चिंता'' वास्तव में बेहद सटीक और उचित शीर्षक है। दरकिनार होती मानवीय संवेदनायें संबंधों को खोखला बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ रही हैं। ऐसे में श्रीवास्तव बाबू की अपनी अर्द्धांगिनी के प्रति चिंता वर्तमान समाज को एक अर्थपूर्ण संदेश देती है। पुत्र को नौकरी और पत्नी को पेंशन वाली बात इस लघुकथा की रूह है।

"यहाँ मैंने अपनी सम्पत्ति बेची और वहाँ उसने अपना संस्कार बेच दिया।'' यह पंक्ति संभवतः लघुकथा "जहर की कोख'' का सार है। भारतीय संस्कृति को नोचती खसोटती पाश्चात्य सभ्यता पर कुठाराघात है यह लघुकथा। तालीम हासिल करने सात समंदर पार भेजे गये बच्चों को जब अपनी ही मिट्टी की सोंधी महक बदबूदार लगने लगती हैं तो मन अत्यन्त दुखी हो जाता है। तब स्वाभिमानी माँयें यह कहने पर भी विवश हो जाती हैं कि इससे अच्छा था कि वो निःसंतान ही रह जातीं। अपने संस्कारों को जीवित रखने की चीख़ चीख़ कर गुहार लगाती यह लघुकथा पठनीय है।

"शैवालों भरी झील" तो कहीं और ही ले जाती है....किसी और दुनिया में। वस्तुतः यह नारी मन की वो पीड़ा है जिसे पुरुष समझ ही नहीं सकता। एक महिला का दूसरे महिला को अपने घर बुलाना, यह मालूम करने के लिए कि वो गेरुआ वस्त्र उसपर कैसा लगता है, चौंकाता भी है और उस वाक्य की कितनी आवश्यकता है उस लघुकथा को, यह भी बताता है। अन्त में मुख्य पात्र की आत्महत्या और उससे पूर्व अपना सब कुछ अपनी नौकरानी को सौंप देना लघुकथा को सशक्त बनाता है। नारी मन की यह व्यथा- कथा अत्यन्त मार्मिक है।

संक्षेप में, हम यह कह सकते हैं कि आभा पूर्वे की सभी लघुकथाएँ वर्तमान समाज को आईना दिखाती हुई प्रतीत होती हैं। उनके कहने की

सहजता किसी भी पाठक को अपनी ओर खींच सकती है। ये तर्कसंगत भी हैं और संवेदनात्मक भी। इनमें रवानी भी है और ठहराव भी। इनमें सोच की गहराई भी है और सोच का विस्तार भी।

मैं लेखिका को उनकी इन लघुकथाओं के लिए अनेकानेक शुभकामनाएँ देता हूँ।

❐

डॉ. आभा पूर्वे का उपन्यास 'कुँवर विजयमल'

—शीतांशु अरुण

मन में हलचल सी उठने लगती है जव किसी बड़े साहित्यकार कि पुस्तक हाथ में आ जाती है तो, ऐसा ही हुआ डॉ. आभा पूर्वे द्वारा लिखित उपन्यास कुंवर विजयमल पाकर।

लेखिका ने इस उपन्यास को कुल चौदह भागों में बांटकर रचना की है। कुंवर विजयमल अंगक्षेत्र कि मूल लोकगाथाओं में से एक है।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने शीर्षक से पृथक दो पात्रों अर्पिता एवं मान्यता को केंद्र में रखकर उपन्यास लेखन पर चर्चा करती हुई आगे बढ़ी है। इस पुस्तक में बहुत बड़ी खासियत नजर आई कि वर्तमान समय में बीते समय कि कथाओं से उठने वाली प्रश्नों को बहुत ही सुन्दर तरीके से चिन्तन मनन के साथ तर्कसंगत टिप्पणियों से खंडित करती हुई आगे बढ़ीं है जो पाठकों के मन को अपनी ओर खींचने में कामयाब रहती है।

उपन्यास में कुंवर विजयमल के पूर्वजों से कथा प्रारंभ कर विजयमल के संघर्ष तक को दर्शाया गया है।

प्रस्तुत उपन्यास का लेखन फिल्मी अंदाज़ में किया गया है। भाग ११ से १३ तक पाठकों को पढ़ने कि गति मिलती है, शेष भाग में ऐसा लगता है कि शोध किया जा रहा हो, जो पाठक मन को आगे बढ़ने की गति को अवरूद्ध करता है।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका द्वारा कुंवर विजयमल से ज्यादा क्षेत्रीय लेखकों, रचनाकारों को खुश करने के चक्कर में स्थान देकर मूल तथ्यों से भटककर पाठकों को मधुर रस कि घुट्टी पिलाने से चूक गईं हैं। यदि रचनाकारों पर विस्तृत प्रकाश नहीं डालकर शीर्षक के अनुसार कुंवर

विजयमल पर प्रकाश डाला गया होता तो उपन्यास और भी रोचक व मनलुभावन होता। तो लेखिका आम पाठकों को बांधने में सफल हो जाती।

मैं कोई समीक्षक या आलोचक नहीं हूं, पाठक मन में जो बातें आईं उसे मैंने व्यक्त किया है।

वैसे यह उपन्यास उपन्यासकार कि अनमोल कृति है जो लोकगाथाओं पर शोध करने वाले विद्यार्थियों के लिए महत्वपूर्ण श्रेणी में रहकर मील का पत्थर साबित होगा।

उपन्यासकार डॉ. आभा पूर्वे को हार्दिक बधाई।

❐

क्यों बाँधती हैं आभा पूर्वे की कहानियाँ

—दयानंद जायसवाल

'चन्दन जल न जाए' कहानी-संग्रह, डॉ. आभा पूर्वे, भागलपुर (बिहार) द्वारा रचित कहानियों में स्त्री-वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हुए उनके जीवन का सारा परिदृश्य सामने लाया गया है।

लेखिका ने स्त्री विमर्श, पुरुष वर्चस्व और मर्दवादी समाज की सटीक व्याख्या की है। आभा पूर्वे एक सशक्त औरत की कामना करती हैं। सामाजिक मान्यता प्राप्त रूढ़ रिश्तों-संबंधों की मर्यादाओं का समय आने पर उचित विरोध करने का सुझाव देती हैं। स्त्री-स्वर, समस्याएँ और समाधान इनके कथा-साहित्य में प्रखर स्वर मिला है। यह भी सच है कि इनकी कहानियों में स्त्री अधिक मजबूती के साथ पाठक के सम्मुख आती है।

हिंदी साहित्य के लिए समर्पित डॉ. आभा ने अबतक कविता, कहानी, उपन्यास आदि को रचकर पाठकों को एक अमूल्य निधि दी है, जिनमें व्यापकता एवं गहनता की प्रचुरता है। कहानियों में मौजूदा दौर के बदलते परिवेश में जिंदगी की नयी रंगतों के बीच समाज की नयी-पुरानी बातों की चर्चा को खास तौर पर विषयवस्तु के रूप में लायी हैं। 'चन्दन जल न जाए' कहानी-संग्रह में कुल १३ (तेरह) कहानियाँ हैं। इन कहानियों में लेखिका आज के समय में महिलाओं के जीवन से जुड़ी बातों की जांच-पड़ताल में खास तौर पर संलग्न प्रतीत होती है और इस बात को इस संग्रह की पहली कहानी 'और धनेसरी आजाद हो गई' को पढ़ कर ठीक से जाना समझा जा सकता है। समाज की तमाम छोटी-बड़ी घटनाओं के माध्यम से घर परिवार आंगन चौखट से लेकर इससे बाहर के विस्तृत संसार में नारी के जीवन में घटित होने वाली समसामयिक

विषयों की तमाम बातों को शिद्दत से बताने-समझाने की चेष्टा समाहित दिखाई देती है। इस कहानी में आज की लड़कियों के सामने विवाहोपरांत उपस्थित होने वाली कठिनाईयों को लेखिका ने कहानी की विषयवस्तु में यत्न से उठाया है। इनकी दूसरी कहानी 'भय' है, जिसमें जैविक एवं मानसिक धरातल पर नारियों का संघर्ष एवं द्वंद्व, पहचान का संकट, भाई-बंधुओं द्वारा लूटने की प्रवृत्ति आदि चित्रित की हैं। कहानी में कावेरी नाम की लड़की अखबार के माध्यम से एक पिता के द्वारा पुत्री के बलात्कार की घटना पढ़ती व जानती है, तो उसे पुरुष समाज से क्या अपने पिता के सामने आने से भी भयभीत दिखती है। इनकी कहानियाँ सादी, सहज, संवेदनशील, और मनोहारी हैं। हर कहानी में मर्म है, गहराई है और मानव मन की गहरी पहचान है। किरदार कोई भी हो, किसी उम्र का, जीवन के किसी भी तरह का पर्यवेक्षण—उसे बहुत समझ के साथ गढ़ा गया है।

युगों से नारी शोषण का शिकार रही है। नारी की नारी सुलभ संवेदनाओं की हर युग में उपेक्षा हुई है। समाज का कोई भी वर्ग रहा हो, वह नारी देह के भूगोल की ही व्याख्या करता रहा है। समाज का कोई भी रिश्ता स्त्री को सुरक्षा-कवच प्रदान नहीं कर पाया है। सुरक्षा का नाजुक घेरा टूटते ही नारी में केवल शरीर नज़र आती है और पुरुष उपभोक्ता मात्र। इस दयनीय स्थिति के पीछे कई कारण हैं। लेखिका इन विभिन्न कारणों को विभिन्न कथाओं के माध्यम से प्रस्तुत की हैं। कुछ तो गरीबी के कारण जीवन की न्यूनतम दैनिक आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं कर पाती। इनमें पति या परिवार के पुरुष सदस्यों का निकम्मापन भी शामिल है।

इनकी कहानियाँ 'शिरीष की सुधा', 'चन्दन जल न जाए', 'अंतहीन वैतरणी', 'कैसी द्रोपदी-कैसा महाभारत', 'निराशा' आदि कोई भी हों, चटखारे लेकर पढ़ने की नहीं हैं, बल्कि पाठक को चिन्तित करने वाली, उद्वेलित करने वाली एवं जिम्मेदारी का अहसास जगाने वाली हैं। ये रुग्ण समाज के घृणित फोड़े की शल्यक्रिया करने वाली कहानियाँ हैं, जो हमें प्रश्नाकुल करती हैं, बेचैन करती हैं। ज्यादातर कहानियां आकार प्रकार में छोटी हैं, लेकिन इनकी विषयवस्तु में समाज के बड़े और ज्वलंत

मुद्दों का समावेश है और लेखिका मानवीय धरातल पर अक्सर अपनी कहानियों में समाज की विसंगतियों, घर-आंगन से लेकर दफ्तर और अन्य तमाम जगहों पर बदलते परिवेश में जीवन की कठिनाइयों से जूझती महिलाओं की व्यथा कथा के अलावा समाज में गरीबी और अन्य समस्याओं के भंवर जाल में आम नारी के भटकाव से जुड़े प्रसंगों को विचारार्थ प्रस्तुत करती प्रतीत होती हैं।

लेखिका को हार्दिक बधाई एवं पुस्तक की सफलता हेतु मेरी शुभकामनाएं।

❐

प्राणवायु की तरह है आभा पूर्वे की कहानियाँ

—डॉ. अमरेन्द्र

जब से हिन्दी विदेशी साहित्य की अपानवायु को अपने उदर में ले बैठी, उससे उसका दैहिक आकार चाहे जितना माँसल बना हो, उसकी आत्मा का स्वास्थ्य कान्तिमय नहीं रह सका है। जड़ों की तलाश की जगह विदेशी भावों के साथ हिन्दी कथा-साहित्य के इस अप्राकृत मैथुन का दुष्परिणाम यह हुआ कि जहाँ साहित्य कभी अन्नमय कोष से प्रारम्भ होकर प्राणमय कोष, आनन्दमय कोष तक की यात्रा तय करता था, वहाँ अन्नमय कोष से प्रारम्भ हो कर कमर के भूगोल में बंध कर रह गया। और यह काम महानगरों के उन कहानीकारों ने विशेष रूप से किया, जिनके लिए भारतीय संस्कृति गुलामों की संस्कृति थी, असभ्य, असंस्कृत की संस्कृति थी और भारत में ऐसा भी कुछ नहीं था, जो कहानी को छू कर पुरस्कार के योग्य बन सके। रातों-रात अपनी विदेशी पहचान के लिए हिन्दी के कई कथाकार ने जिस तरह भारतीयता की विशाल प्राणमयी प्रतिमा को बमों, टैंकों से उड़ाया और कि मुर्दाघरों को भी यौन-तृप्ति का सुरक्षित केन्द्र घोषित किया, इससे आधुनिक भारतीय साहित्य के इतिहास का सबसे बड़ा दुर्भाग्य काल प्रारम्भ हुआ। आज भी हिन्दी कहानी कमर के भूगोल से पूरी तरह बाहर नहीं हो पा रही है।

इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि हिन्दी कहानी को इस कुत्सित संस्कार से मुक्ति दिलाने में महिला कथालेखिकाओं ने जो धर्मयुद्ध किया है, वह महाभारत की तरह अमर बन गया है। मैं उन कथा-लेखिकाओं के बारे में नहीं कह रहा और न उनकी उन कहानियों के बारे में, जिनमें उन्होंने पुरुष इच्छाओं के अनुकूल दिखने की होड़ में नारियों को जहाँ-तहाँ निर्वस्त्र किया है। मैं उन लेखिकाओं के बारे में कह रहा हूँ, जिनके सामने

यह आदर्श भी था कि स्त्री के गुण जब पुरुष में आ जाते हैं, तो पुरुष देवता हो जाता है और पुरुषों के गुणों को आत्मसात करने वाली स्त्री राक्षसी हो जाती है। इसी मान्यता के आस-पास चलती हुई अनेक हिन्दी कथा-लेखिकाओं ने परिवार की चहारदीवारों में बेचैन, आशा-आकांक्षाओं को बनाती-सँवारती, आर्थिक तंगी से बिखरती और मर्यादा के बन्धनों से कुम्हलाती-घुटती स्त्रियों की जो जीवन-तस्वीर प्रस्तुत की है, वह आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य की कीमती सम्पत्ति है, इसमें सन्देह कहाँ है ? इन्हीं महिला कथाकारों में एक नाम है—आभा पूर्वे।

पिछले एक दशक से हिन्दी पाठकों के बीच अपनी कहानियों को लेकर चर्चा में रहती आ रही आभा पूर्वे की कहानियों की प्रासंगिकता इनकी तात्कालिकता को लेकर नहीं है, बल्कि उन कहानियों में प्रकट शास्वत आवश्यकताओं को लेकर है, जो कि किसी भी युग में और व्यक्ति के लिए महत्वपूर्ण होती है। इसी से आभा पूर्वे की कहानियों को किसी 'वाद' के खूंटे से बांध कर मूल्यांकन करना-इनकी कहानियों को पीठ की ओर से देखना होगा, और फिर एक राय तय कर लेने की तरह। प्रतिबद्धता, पूर्वाग्रह से उदासीन पूर्वे की कहानी जीवन के जिस किसी एक अंश को घेर कर उठती है, वह इतना विश्वसनीय है कि वह किसी एक वर्ग का नहीं, एक जाति का नहीं, एक देश का नहीं, यहाँ तक कि वह कालांश का अतिक्रमण कर सर्वकालिक बन गया है। यही कारण है कि आभा पूर्वे की कहानियों को नए पाठकों के बीच इतनी लोकप्रियता प्राप्त है।

कल जब कटते वनों के प्रलय-काल में कागज का वर्तमान अतीत बन जाएगा, तब भी आभा पूर्वे की कुछ कहानियाँ अपनी संरचना शैली के कारण जीवित रहेंगी, क्योंकि पूर्वे की कहानियों के शिल्प-विधान की जड़ें लोककथाओं की मिट्टी में धंसी हैं। 'ताकि चन्दन जल न जाए' और 'धनेसरी आजाद हो गई', 'सरजू का सूरज डूब गया' जैसी कई कहानियाँ मौखिक रूप में भी जीवित रहने की सामर्थ्य रखती हैं। लेकिन इनकी सारी कहानियों में इसी रूप गठन की तलाश बेमानी है, यह हो भी नहीं सकता, क्योंकि पूर्वे प्रेमचन्द युग की कथालेखिका नहीं हैं, नई कहानी के विन्यास से इनकी स्वाभाविक निकटता होने के कारण इनकी कहानियों में

मन की बेचैनियों को जहाँ आकार देने का सफल प्रयास है, वहाँ स्थूल कथानक का बहिष्कार-पूर्वे को नई कहानी के शिल्प के कथाकार की पंक्ति में रखता है। 'भय', 'औरत का प्रेत', 'अनकही कथा', 'ऋणी', 'शिरीष की सुधा'—नई पृष्ठभूमि के नए शिल्प में रची गई कहानियाँ हैं, जो गढ़न के अत्यधिक जड़ाऊपन से दूर होकर भी, प्रभाव के सौन्दर्य से उतनी ही भरी-पूरी हैं।

आभा पूर्वे की कहानियाँ अपने वर्तमान के संकटों के प्रति बहुत सावधान हैं और ये संकट हैं—घोर अस्तित्ववादी चिंतन के कारण व्यक्ति में सामूहिक सुरक्षा की जगह नितान्त आत्मचिन्ता का जमाव, भोगवादी नास्तिक विचारधारा से स्त्री-पुरुष के बीच से श्रद्धापूर्ण रिश्तों का उखड़ जाना, फ्रायडीय यौन चिन्तन के प्रभाव के कारण अश्लीलता का भयावह दर्शन। पूर्वे की कहानियाँ इन संकटों के भीतर तक जाती हैं, और फिर संकटों के कारणों पर विचार भी करती हैं—'और धनेसरी आजाद हो गई', 'भय', 'औरत का प्रेत' जैसी कहानियों में नई शताब्दी के संकटों पर अगर निगाह है, तो इनसे मुक्ति की दिशा में सत्-साहित्य के आन्दोलन को प्राणमय करने की चेतना भी, जो इधर की हिन्दी कहानियों से अलग हटकर प्रवास का शापित जीवन बिताने के लिए बाध्य हुई है। यह पूरे विश्वास के साथ मैं यह कहना चाहूँगा कि आभा पूर्वे नई-शताब्दी की चुनौतियों को स्वीकारने और स्वर देने वाली कथालेखिका हैं। मार्क्स के नास्तिक आर्थिक चिन्तन ने समाज को जिस तरह आध्यात्मिक रिश्तों से अलग-थलग किया और जिसके कारण आदमी अपने पारिवारिक रिश्तों को भी आर्थिक दौड़ में चकनाचूर कर आया है, उस भयावह मानवीय त्रासदी को आभा पूर्वे ने 'अब माँ का क्या होगा' कहानी के माध्यम से जिस तरह उपस्थित किया है, क्या यह सिद्ध करने के लिए काफी नहीं है कि आभा पूर्वे की कहानियों को नई शताब्दी के संकटों ने जन्म दिया है, और कि जिनसे ही मुक्ति के लिए ये कहानियाँ—घर से लेकर बाहर तक दौड़-धूप करती कहानियाँ हैं ? लेकिन सब कुछ कहानी के दायरे में ही। दायरे से बाहर आभा पूर्वे की कहानियों को कुछ भी बर्दाश्त नहीं। 'अब माँ का क्या होगा' भौतिकवाद के घोर आर्थिक स्वभाव से उपजी कहानी है, और जिसे ही व्यक्त करने के लिए पूर्वे ने परिवार के सबसे

कोमल और श्रद्धापूर्ण रिश्ते—माँ और पुत्री के रिश्ते-को कहानी का केन्द्र बनाया है, शायद उदण्ड आर्थिक स्वभाव को व्यक्त करने का इससे अधिक प्रभावपूर्ण मार्ग दूसरा हो भी नहीं सकता है। माँ-पुत्री का नैसर्गिक सम्बन्ध तो लोकगीतों में सुरक्षित है ही। पूर्वे की कहानी-कला में सौन्दर्य के ऐसे स्थलों को अनदेखा कर चलने में इनकी कहानियों के शिल्प को समझने में दिक्कत आयेगी। एक बात और कि पूर्वे ने कहीं भी मार्क्स, फ्रायड या सार्त्र के विचारों के प्रभाव को नकारने की कोशिश नहीं की है, उन्हें एक संस्कार देने का प्रयास निसन्देह ही यहाँ है—संस्कार में उनके प्रभावों को व्यक्त करने की कोशिश ही यहाँ है—इस बात को हम आभा पूर्वे की ही कहानी 'वैतरणी का किनारा' से समझ सकते हैं और इसी आदर्श शिल्प के कारण इनकी कहानियाँ हिन्दी की आदर्श कहानियाँ हैं। ❐

जसवन्त सिंह विरदी के प्रश्न और आभा पूर्वे के उत्तर

(यह सच है कि रचनाकार अपने बारे में कुछ कहना उचित नहीं समझता, क्योंकि उसने जो कुछ कहना होता है, वह अपनी रचना द्वारा कह देता है। फिर भी रचनाकार के प्रति उसके पाठकों में जिज्ञासा बनी रहती है कि रचनाकार कौन है, कैसे सोचता है और कैसे लिखता है ?

लेखिका आभा पूर्वे के प्रथम कहानी-संग्रह 'शिरीष की सुधा' के बारे में ही चर्चा शुरू हो गई, तो उसकी रचना-प्रक्रिया के बारे में भी पाठकों में उत्सुकता बढ़ गई।

मैंने अलग से भी कहानी-संग्रह पर लिखा था, मगर उस आलेख में मेरे विचार थे। पुस्तक के सम्बन्ध में कथालेखिका आभा पूर्वे से बातें हुईं तो उन बातों ने बाकायदा एक साक्षात्कार का स्वरूप बना लिया। मेरे मन में आया कि पाठकों के सामने भी उन बातों को प्रस्तुत किया जा सकता है, जिसका एक अंश आपके सामने है।)

कब लिखना शुरू किया ?

बात तब की है, जब बिहार आरक्षण के नाम पर बैकवर्ड, फारवर्ड में तब्दील हो गया था। जातीय हिंसा भी होने लगी थी। जातीय विरोध तो चरम पर था। उस समय अंगिका का आन्दोलन भी अपनी मुख्य धारा में आ गया था, जब आरक्षण के नाम पर जातीय विरोध उन्माद पर था, तो मैंने आरक्षण में आर्थिक आधार का पक्ष लेती हुई, अंगिका भाषा में एक लघु उपन्यास लिखा, जो ई. १९९१ में प्रकाशित हुआ। इसमें एक बड़ी जाति की बेटी की एक दलित जाति के बेटे के प्रेम में पड़ने की कथा है। नायिका के पिता इसके पक्ष में हैं, लेकिन माँ विरोध करती है। नतीजे में

नायिका कोशी में समा जाती है। उपन्यास के शिल्प की दृष्टि से यह कितना सफल है, मैं नहीं कह सकती, लेकिन मेरे लेखन का यह प्रस्थान बिन्दु होने के कारण मेरे लिए इसका ऐतिहासिक महत्व तो ही है।

पुस्तक 'शिरीष की सुधा' की भूमिका में आपको नारीवाद की कथालेखिका कहा गया है। क्या आप सहमत हैं? क्या लेखक के लिए किसी खेमे में शामिल होना जरूरी है ?

भूमिका में व्यक्त विचार मेरे नहीं, समीक्षक डॉ. विजेन्द्र नारायण सिंह जी के हैं। मेरे सहमत या असहमत होने का इसमें सवाल नहीं है। लेखक का काम सिर्फ लिखना है। कोई किस नजरिये से उसकी कृति को देख रहा है, यह देखना उस देखने वाले की नजरों पर निर्भर करता है। मैं अगर इस पर आपत्ति भी प्रकट करूँ, तो वह किसी के नजरिये को किस हद तक बदल पायेंगी। मुझे लगता है कि कोई भी रचनाकार जब रचना-सृजन की ओर गतिशील होता है, तब उसके सम्मुख किसी विशिष्ट विचार से बँधे रहने का मोह भी होता है क्या—मैं नहीं कह सकती। उसके सामने तो एक महत्वपूर्ण सत्य होता है, जिसे आपने बहुत बड़ा कहा है। यहाँ मैं इस सत्य के सम्बन्ध में एक बात यह भी कहना चाहूँगी कि जो सम्पूर्ण सत्य होता है, उसमें किसी खंडित विचार या व्यक्ति के प्रति घृणा, द्वेष नहीं होता। वह सिर्फ एक व्यवस्था का पक्षपाती होता है, जिसमें अनैतिकता का विरोध होता है और होता है मानवता का समर्थन। आज विचारों की दुनिया में नारीवाद का जो रूप प्रचारित किया गया है, वह नारी को पुरुषों के खिलाफ खड़े होने को तैयार करता है, पुरुषों को नारी-समाज का दुश्मन के रूप में प्रतिबिम्बित किया जाता है। अब आप ही बताइये कि जो नारीवाद इस सोच पर खड़ा होता है, उसका समर्थन ऐसा साहित्यकार कैसे कर सकता है, जिसके सम्मुख साहित्य का यह आदर्श जगमगाता हो-सच्चा साहित्य वही है जो सम्पूर्ण समाज को करुणा और प्रेम से बाँधता है और सबके लिए मुक्ति का द्वार खोलता है। मेरी रचनाओं में पुरुषों के प्रति घृणा नहीं है, लेकिन उस व्यक्ति के प्रति समर्थन भी नहीं है जो किसी व्यक्ति के प्रति अमानवीय है, व्यक्ति के अन्तर्गत नारी भी है।

आपने पहले ये कहानियाँ अपनी मातृभाषा अंगिका में लिखी थीं, अंगिका का क्षेत्र कहाँ तक है ?

आपने अंग जनपद के क्षेत्र के बारे में मुझसे पूछा है, तो एक बार मेरे सामने अतीत के अंग जनपद का वह विस्तृत भूखण्ड खड़ा हो गया है जो अंग जनपद था। ऐतरेय ब्राह्मण के एक श्लोक में तो यहाँ तक लिखा हुआ है कि राजा अंग ने सम्पूर्ण पृथ्वी को ही जीतकर अश्वमेघ यज्ञ किया था—

अंग समन्तं सर्वतः पृथ्वीजयन परीयायाश्वेन च मेध्येनेजे इति।

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर ने अपने इतिहास ग्रंथ 'संस्कृति के चार अध्याय' में भी दुनिया पर अंग जनपद के सांस्कृतिक उपनिवेशवाद के कायम होने का उल्लेख किया है। इतिहास इसका प्रमाण है कि कम्बोडिया, जावा, सुमात्रा, चीन में कभी अंगिका संस्कृति का फैलाव और शासन था। जहाँ तक अंग जनपद क्षेत्र के विस्तार का प्रश्न है, वह वेद के मंत्रों से स्पष्ट होता है कि उत्तर प्रदेश की सरयू नदी अंग की सीमा में बहती थी और भुवनेश्वर का शिव मंदिर इसी अंग का पूर्वी क्षेत्र था। लेकिन भाषा के आधार पर जब आजाद भारत में अंग जनपद का भूगोल निश्चित किया गया, तब इसके अंतर्गत पुराना भागलपुर प्रमण्डल (जिसमें अभी हाल तक के कोशी, पूर्णिया, मुंगेर, संथाल परगना और भागलपुर प्रमण्डल सम्मिलित थे) को ही रखा गया। जबकि आजाद भारत के पूर्व जो अंग जनपद का मान्य भूगोल था, वह हजारीबाग यानि मानभूमि से लेकर उत्तर में हिमालय की तलहटी पूर्णिया तक फैला हुआ माना जाता था और यही भूगोल आज भी अंगवासियों के मन में समाया हुआ है। इस भूगोल का ही उल्लेख बिहार राष्ट्रभाषा परिषद से प्रकाशित 'प्राङमौर्य बिहार' में भी प्राप्त है।

'शिरीष की सुधा' में आपको सबसे अधिक प्रिय लगने वाली कहानी कौन-सी है ?

आपने मुझसे ऐसा प्रश्न कर दिया कि सचमुच में मैं यह सोचने के लिए विवश हो गई-क्या इस संग्रह में मेरी कोई ऐसी भी कहानी है—जिसे मैं कम पसन्द करती हूँ। मैं आपसे बताऊँ कि कहानी मैं तब तक नहीं

लिखती, जबतक मुझे कोई बात बहुत मथती नहीं। और यह सोचने के लिए बाध्य नहीं करती कि अगर इसका अनदेखा समाज के द्वारा किया जाता रहा, तो इसका भयावह परिणाम हमारे समाज को, हमारे परिवार को भुगतना पड़ सकता है और व्यक्ति को भी। आज भी, जब मैं अपनी किसी कहानी को पढ़ती हूँ, तो मेरा ध्यान कहानी की उसी अन्तर्वस्तु पर होता है और यही कारण है कि मुझे 'शिरीष की सुधा' की सारी कहानियाँ अपनी-अपनी जमीन पर प्रिय ही लगती हैं।

वैसे 'शिरीष की सुधा' में जब मैंने 'शिरीष की सुधा' को पहली बार रेडियो पर प्रस्तुत किया था, तब इसकी प्रशंसा हिन्दी के जमे हुए कथाकार और वयोवृद्ध साहित्यकारों ने भी की थी। और जब इतनी सारी प्रशंसाएं मुझे उस कहानी पर मिली थीं, तब मुझे यही लगा था कि 'शिरीष की सुधा' ही मेरी सबसे अच्छी कहानी है। लेकिन मैं आपसे कहूँ कि आज भी मुझे 'भय' कहानी सबसे ज्यादा झकझोरती है। 'शिरीष की सुधा' एक व्यक्ति के मनोविज्ञान की समस्या है। लेकिन 'भय' कहानी-समाज में पनप रही मीडिया की अपसंस्कृति के खतरनाक परिणाम को हका-हका कर कहती कहानी है और जिसका दुष्प्रभाव कल इतना भयावह सिद्ध हो सकता है कि हमारा पूरा-का-पूरा समाज छिन्न-भिन्न हो जाए। फिर भी मैं आपसे यह कहना चाहूँगी कि संग्रह में जो भी कहानी है, वह कोई-न-कोई एक बड़ी सामाजिक और मानवीय समस्या को लेकर चलनेवाली कहानी है और यही कारण है कि आज भी—जब मैं अपनी किसी कहानी को दुहराती हूँ, तो वे मुझे बहुत अच्छी लगती हैं। आपको आश्चर्य होगा कि मेरे पास मेरे पाठकों की जो प्रशंसाएँ आयीं, वे अलग-अलग कहानियों के लिए प्रशंसाएँ हैं। बहुचर्चित कथाकार कमला प्रसाद बेखबर जी का एक पत्र आया, जिसमें उन्होंने लिखा है कि इस पुस्तक की सबसे बड़ी खूबी यह है कि 'तुम्हारी भाभी—जो धार्मिक पुस्तकों की पाठिका है—ने इसे आद्योपान्त पढ़कर इसकी बड़ाई की है और अब अपनी बेटी प्रो. पुष्पा को पढ़ने के लिए दी है।'

'शिरीष की सुधा' में आपने जो जीवन-दर्शन प्रस्तुत किया है, उससे आप मन से सहमत हैं ?

रचनाकार जब अपनी रचनाओं के माध्यम से जगत के प्रति कुछ संदेश व्यक्त करता है, और वह अगर एकांगी हो, उसमें पूर्णता का अभाव हो, तो मैं समझती हूँ कि वह रचनाकार का जीवन-दर्शन नहीं हो सकता। मेरे कहने का मतलब यह है कि जब रचना में किसी एक पक्ष के समर्थन में वकालत की जाए—भले ही उस वकालत से किसी दूसरे का कितना ही अहित हो जाय—तो उसे जीवन-दर्शन की कोटि में रखना बेमानी होगा। कुछ आलोचकों की यह सोच रही है कि मैंने नारी के समर्थन में कहानियों को गढ़ा है और वह भी पुरुषवादी व्यवस्था को तोड़ने के ख्याल से—मैं समझती हूँ कि उन्होंने मेरी रचनाओं में मेरे मन और विचार को समझने की कोशिश नहीं की।

मैंने मानवता की रक्षा में अपनी कहानियों का सृजन किया है, अगर नारीवाद की अंध रक्षा करनी होती तो 'काला इन्द्रधनुष' में मैं पुरुष के प्रति संवेदना का उभार नहीं करती। सच पूछिए तो नारीवाद के समर्थन में मैंने कहानियों का सृजन किया ही नहीं। 'ताकि चंदन जल न जाये' नारी-अस्मिता की रक्षा में लिखी गई कहानी नहीं है, बल्कि लोगों में अपने लिये जीने की आ रही प्रवृति का विरोध है—जिस प्रवृति का ही विरोध गणपत के पिता त्रिलोचन महतो करता है।

आप की कहानी में शिल्प गौण हैं, जिसे अंग्रेजी वाले कहते हैं Art is to be artless. क्या आप भविष्य में इस सरल शैली को बनाएँ रख पायेंगी ?

कहीं मैं एक लेख पढ़ रही थी, जिसमें कवि रामधारी सिंह दिनकर के एक कथन को उद्धृत किया गया था—वही पानी अपने ऊपर काई को जमाता है, जिसमें गहराई और प्रवाह नहीं होता—गहरा और प्रवाहित होने वाला जल-अपने सीने पर काई पैदा करके नहीं चलता। काई जलाशय अपने ऊपर की काई से अपने उथलेपन को छिपाने में जरूर समर्थ हो जाता है। मैं साहित्य में शैली और शिल्प की क्लिष्टता को काई की तरह मानती हूँ। आप पहले के कथाकारों को पढ़ें-आपको वहाँ शैली की दोहरी-तिहरी चालें नहीं मिलेंगी। वहाँ कथ्य की प्रधानता है और उस कथ्य को कैसे प्रभावी ढंग से कहा जाए, चिन्ता इस बात की है। अब नये कथाकारों में

कथ्य के प्रति चिन्ता कम, लेकिन आधुनिक बनने के लिए शिल्प के प्रति चिन्ता ज्यादा है। पूरे विश्वास के साथ मैं कहती हूँ कि शैली प्रधान ये कहानियाँ मुट्ठी भर लोगों को ही रिझा सकती हैं, वो पूरे समाज की चीज नहीं बन सकतीं।

आज जटिल मानसिकता की अभिव्यक्ति के नाम पर जिस जटिल शैली को कहानी में ग्रहण किया जा रहा है, वह हिन्दी कहानी के लिए हितकर नहीं है। शैली का कहानी में स्थान-सब्जी में नमक की मात्रा की तरह ही हो सकती है, और एक बात कि कहानी जिसे गल्प कहते हैं, यह गल्प है क्या ? गप्प ही तो है। मैं आज भी मानती हूँ कि कहानी को गप्प-शैली में ही होना चाहिए। गप्प को समझने में दिक्कत नहीं होती। लोकसाहित्य की शैली भी गप्प-शैली की है और लोककथाओं की शैली में जो आज की कहानियाँ लिखी जा रही हैं, ये लोककथाओं से कम असरदार नहीं हैं। अब तो हिन्दी के कई कथाकार इस सत्य को समझने भी लगे हैं। मैं अपनी कहानियों से हिन्दी पाठकों को कथाशिल्प और शैली का ज्ञान नहीं देना चाहती, मैं उन्हें जीवन की समस्याओं और नये संकटों के अपने अनुभवों से परिचित कराना चाहती हूँ। और अगर मैं यह काम सरल शिल्प और शैली से कर पा रही हूँ तो मैं शैली और शिल्प के जंगल के अंधेरे से भविष्य में भी बचने का प्रयास करती रहूँगी।

आजकल कहानी साफ-सुथरी नहीं रही। मेरे कहने का भाव यह है कि लेखक/लेखिकाएँ अश्लीलता द्वारा सस्ती वाह-वाही चाहने लगे हैं। मगर आप की कहानियाँ स्वस्थ और साफ हैं। इस स्वस्थ प्रवृति को आपने कैसे बनाए रखा ?

आज-कल हमारी कहानियाँ अश्लील हो गई हैं, तो यह इसलिए हो गयी हैं कि हमारे कथाकार भी अश्लील हो गये हैं और कथाकार अश्लील हो गये हैं तो इसका एक प्रमुख कारण है कि उनपर पूंजीवाद का प्रभाव है। पूंजीवाद स्वयं एक अश्लील व्यवस्था है। इस व्यवस्था में—माँ से लेकर बहन तक को देह का व्यापार करवाया जा सकता है और जिस व्यवस्था में बूढ़ी, वयस्क, किशोरी और बच्ची की देह में कोई फर्क नहीं किया जाता है। हमारे कथाकार पर ऐसे ही पूंजीवाद का भूत चढ़ बैठा है और

अपनी इस कमजोरी को छिपाने के लिए हमारे कथाकार उत्तर आधुनिकता की बातें करते हैं। यह उत्तर आधुनिकता है क्या ? मुझे लगता है कि स्त्री-पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियों को भी हरदम अश्लील हो जाने के लिए प्रोत्साहनवाद है और इन सबके पीछे अश्लीलता की आड़ में पूंजी बटोरने की कोशिश है। साहित्य का सृजन करना इनका लक्ष्य नहीं है और अपनी इसी मनोवृति के कारण, न केवल अश्लीलता की कहानियाँ लिखते-छापते हैं, बल्कि उससे कहीं ज्यादा भद्दे अश्लील चित्र भी—आवरण से लेकर अंदर तक—छापते हैं।

मैं आपसे जानना चाहूँगी—क्या प्रेमचंद आज अप्रासंगिक हो गए हैं। कौशिक जी अब नहीं पढ़े जाते या फिर ऐसे ही महान कथाकार-क्या अपनी अश्लील कहानियों के कारण विख्यात हैं? अश्लीलता जिस देश की आत्मा में समाहित होती है, वहाँ के लिए वह आराधना की चीज हो सकती है, पेट से लेकर दिमाग तक का भोजन हो सकती है। भारत के संदर्भ में यह बात सत्य नहीं है। यह बात मैं पूरे विश्वास के साथ कह सकती हूँ, आज दूरदर्शन इत्यादि के कारण माँ-पुत्री, बाप-बेटी के बीच खुलापन आया है, लेकिन क्या हम अपनी आत्मा से समलिंगी विवाह का समर्थन कर सकते हैं। दिल्ली जैसी जगहों में कुछ उत्तर 'हाँ' में आ सकते हैं, लेकिन दिल्ली हिन्दुस्तान का दिल नहीं है। इसका दिल पंजाब में है, मध्यप्रदेश में है, बिहार से लेकर आसाम तक में है, और दक्षिण में कन्याकुमारी तक इस दिल की धड़कनों को साफ-साफ सुना जा सकता है। ये धड़कनें भारतीय सामाजिक मर्यादा की धड़कनें हैं, और निरन्तर मनुष्य के उद्दात्त व्यक्तित्व के लिए लड़नेवाली धड़कनें हैं, जिसकी गूंज आप नानक की वाणी में भी सुन सकते हैं, तुलसी के मानस में भी सुन सकते हैं, महर्षि मेँही के सबद में भी सुन सकते हैं, कवि शंकर देव की कविताओं में ही नहीं, सुब्रह्मण्यम भारती की रचनाओं में भी सुन सकते हैं। मेरे जीवन, मेरे व्यक्तित्व के निर्माण में इन महर्षियों की वाणियों की भूमिकाएँ असंदिग्ध हैं। मैं नहीं कहती कि मेरी रचनाएँ इन संतों की तरह श्रेष्ठ हैं, लेकिन मैंने जब भी रचनाएँ की, तो उनकी वाणियों की छाया मेरे पास हमेशा रही है। मैं आपको विश्वास दिलाना चाहती हूँ कि मैंने जब भी कहानी लिखी तो इसे किसी पत्रिका में बेचने के लिए नहीं, दूरदर्शन

के धारावाहिकों में खपने के लिए नहीं, बल्कि इसलिए लिखी, कि मुझे लगा—इसको लिखना अनिवार्य है, नहीं तो हमारी सोच की दिशा खतरनाक हो सकती है और सामाजिक हितों के विरुद्ध भी। जब मैंने अर्थोपार्जन के लिए या फिर पाठकों की घटिया मनोवृति को भड़का कर सस्ती लोकप्रियता के लिए कहानियाँ लिखी ही नहीं, तो ऐसी हालत में मेरी कहानियों का अश्लीलता की बदनाम गलियों से बचकर निकल जाना सहज था, आसान भी।

अपनी कहानी की सृजन-प्रक्रिया के बारे में आपने क्या कहना है?
सृजन-प्रक्रिया अपने-आप में ही इतनी रहस्यमयी तथा अनुभव में होते हुए भी अनुभव से इतनी बाहर रहने वाली क्रिया है कि अगर मैं अपनी रचना-प्रक्रिया के संबंध में कुछ आपको बताना भी चाहूँ, तो यह बताना किसी कहानी या लेख की तरह नहीं हो सकता, जैसा कि मैंने कहा है कि यह प्रक्रिया एक रहस्यमय प्रक्रिया है।

फिर भी इतना तो मैं कह ही सकती हूँ कि अपनी कहानियाँ मैंने तभी लिखी हैं, जब मुझे यह लगा है कि समाज की कोई घटना ऐसी घटना है जिसके संबंध में अगर नहीं लिखा गया तो वह समाज के लिए खतरनाक सिद्ध हो सकती है। एक तरह से मनुष्य को सचेत करने की कोशिश ही मेरी रचना के सृजन में रही है। घटनाएँ कुछ तो ऐसी हैं जो भारतीय समाज में बहुत पुराने समय से चली आ रही हैं और कुछ नयी आधुनिकता की देन है। सच पूछिए तो नयी आधुनिकता के कारण जो हमारी खतरनाक पारिवारिक समस्यायें बढ़ी हैं—जिसके कारण हमारा परिवार और समाज एकदम उटपटांग और बाहियात होता चला जा रहा है, और जो नयी आधुनिकता हमारे भारतीय समाज के लिए कभी हितकारी सिद्ध नहीं हो सकती—मैं समाज की इन नयी स्थितियों पर बहुत गंभीरता से सोचती रही हूँ। और जब भी खूब गहरे में धँसती गई हूँ, परिणामों के परिणाम को पकड़ने की कोशिश की है, तो आखिर में मेरे हाथ में निष्कर्ष के रूप में एक कहानी हाथ लगी है। अगर मेरी कहानी की कोई स्पष्ट रचना-प्रक्रिया हो सकती है, तो मुझे लगता है—यही है।

❐❐